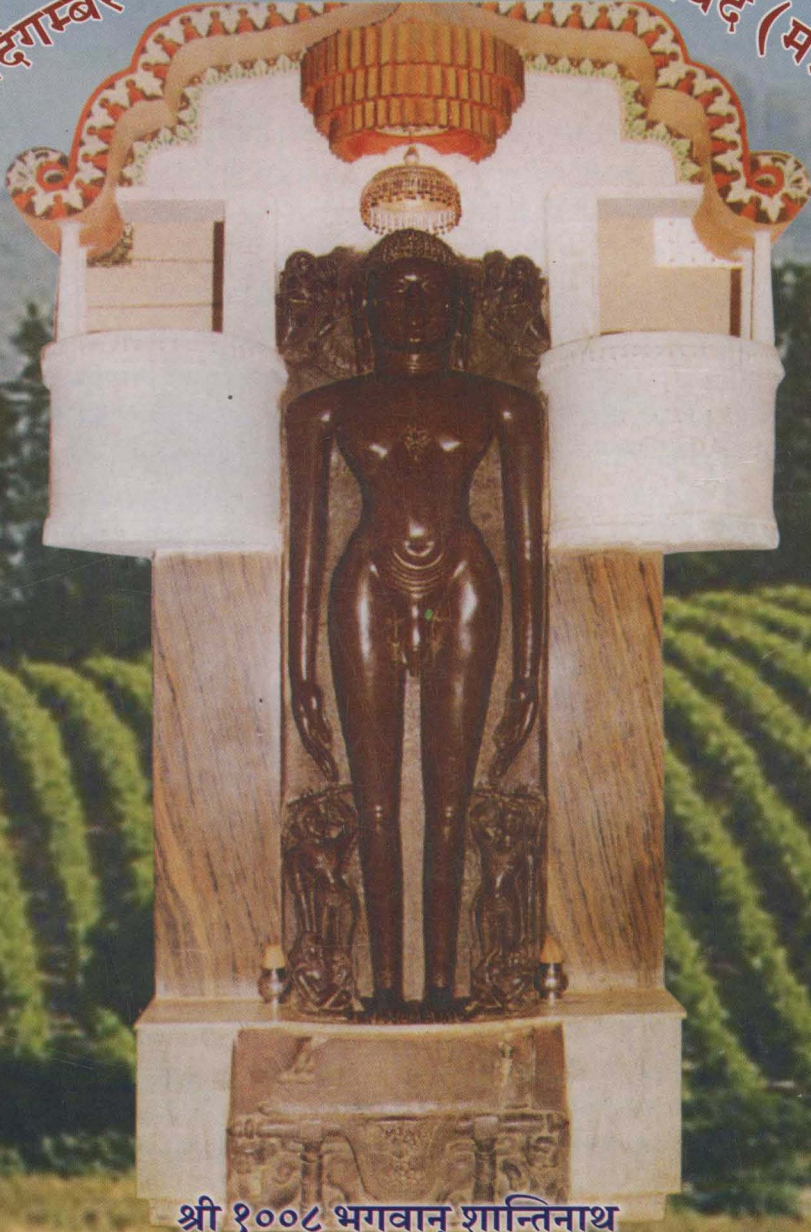


जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2531

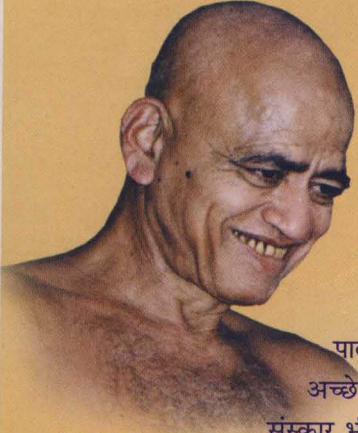
श्री दिगम्बर जैन अतिशय तीर्थक्षेत्र बहोरीबंद (म.प्र.)



श्री १००८ भगवान् शान्तिनाथ

वैशाख, वि.सं. 2062

मई, 2005



सिद्धक्षेत्र कुंडलपुर में दिया गया प्रवचन

● आचार्य श्री विद्यासागर जी

जानना व्यक्ति का स्वभाव है

माँ गर्भस्थ शिशु का पालन-पोषण करती, शिशु पर अच्छे संस्कार पड़ें इस हेतु संस्कार भी प्रदान करती है। बालक को खिलाना-पिलाना-सुलाना इत्यादि भी सिखा देती है। खाना कैसे खाया जाता है सिखाया, ऊंगली पकड़कर चलना सिखाया, लेकिन संसार में स्वयं को जानने का गुण किसने सिखाया? उस बालक को जानना किसने सिखाया? कौन जानता है और कब से जानता है? यदि इसे शोध का विषय बना दिया जाय तो विद्यार्थी पहली सीढ़ी पर ही फिसल जायेगा। किसी ने किसी को जानना नहीं सिखाया। तीर्थकरों को भी किसी विद्यालय में नहीं सिखाया गया। व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है स्वयं के व्यवहार से सीखता है।

आत्मा किसी से संबोधित नहीं होती, अपितु वह परिवर्तित हो जाती है। आपकी जीवन गाथा लिखी जाये तो धरती भी छोटी पड़ेगी। सही जानकारी प्राप्त करने के लिये बाहरी जानकारी गौण करना होगी। देह-चिन्तन से विपरीत चिन्तन ही सामायिक है। शरीर जड़ है, तो आत्मा चेतन है। आत्मा के बारे में जानकारी संकेत है, जो जड़ से विपरीत है, उसकी तुलना नहीं कर सकते हैं।

आदमी जब तिर्यचगति में जाता है तो तिर्यची हो जाता है, नरक में जाता है तो नारकी हो जाता है और जब मनुष्यगति को प्राप्त करता है तो मनुष्य हो जाता है तथा वह जान जाता है कि मनुष्य हो गया है। पानी आग का स्वभाव नहीं बदल सकता, उसे बुझा सकता है। मैं आखिर क्या हूँ? कैसा हूँ? क्यों हूँ? क्यों जानता हूँ? यह जिज्ञासा होनी चाहिये। स्वभाव के विषय में जिज्ञासा होनी चाहिये। जब तक प्रश्न रहता है तो उत्तर के लिये परिश्रम करना पड़ता है, जिज्ञासा रहती है।

दुनियाँ कैसी चल रही है अपनी-अपनी प्लानिंग के साथ? किसी के कहने से कोई अपनी प्लानिंग नहीं बदलता। कोई जानकारी नहीं हो, तो दूसरे की प्लानिंग फेल नहीं कर सकते। आपके उद्देश्य आपके विपरीत हैं, तो आपका ज्ञान अभिशाप है।

चीज की खोज हमें करना चाहिये। आत्मतत्त्व को छानना नहीं, जानना होता है। हमने जिस-जिस को याद किया उसको भूलना होगा, तब आत्मतत्त्व को पहचान पाओगे। यात्रा

भले ही लम्बी हो गई हो, पुरानी हो गई हो, लेकिन आत्मा ज्यों की त्यों है। संवेदन हमारा स्वभाव है, जिसके बल पर हम जानते रहते हैं। स्वभाव को सिखाया नहीं, जाना-पहचाना जाता है। अनुभव की बात कभी विस्मृत नहीं होती, पराई सुनाई बात भुलाई जा सकती है। स्वभाव को पहचान लो, तो विभाव को भूल जाओगे।

मेरे द्वारा पराये का संवेदन नहीं, पराये के द्वारा मेरा संवेदन हो रहा है। हम दूसरे को जानना चाहते हैं, यही सबसे बुरी बीमारी है। हमारी आँखें दूसरे को नहीं दिखा सकती। वस्तुतः हम दो हैं, तो एक कैसे हो सकते हैं? दो वस्तु मिलकर एक तो बन सकती है, लेकिन दो होकर एक कैसे हो सकते हैं? 'आप अकेला अवतरे, मेरे अकेला होय'। वस्तु का स्वभाव रुकना नहीं है, जानना व्यक्ति का स्वभाव है।

ज्ञान आत्मा का स्वभाव है

पुरुषार्थसिद्धयुपाय ग्रन्थ के मंगलाचरण में किसी भगवान का नाम नहीं लिया गया, किसी आत्मा का नाम नहीं लिया गया। उस 'ज्ञान' को अवश्य प्रकाश में लाया गया है। वह ज्ञानज्योति जयशील हो, उसे हमारा बारम्बार नमस्कार। वर्तमान की जितनी भी पर्याय हैं, उस ज्ञान में झलक रही हैं। वह ज्ञान केवलज्ञान रूप है। आचार्य उमास्वामी जी ने तत्त्वार्थसूत्र के पंचम अध्याय में बताया कि गुण हमेशा-हमेशा द्रव्य के आश्रित होते हैं। गुणों की उपासना करने से एक तो अहम्-भाव समाप्त हो जाता है, रागद्वेष समाप्त हो जाता है। गुणों की उपासना कराना जैनदर्शन का परमलक्ष्य है। हम पूजक तो बने, पूज्य क्यों नहीं बने? क्योंकि हमारे सारे गुण मटमैले हैं। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। उस ज्ञान में पूरा का पूरा संसार झलकता है। आजकल छलकन बहुत हो जाता है। हम अड़ोस-पड़ोस में छलक जाते हैं। तीन लोक को जाननेवाला उछलता नहीं। आपको उछलनेवाला नहीं बनना है। समुद्र अपने तक सीमित रहता है, बाहर नहीं आता। यह उसका स्वभाव माना जाता है। बाहर आने पर सुनामी जैसी भीषण त्रासदी घटित हो जाती है। नीचे जल में भूमि के अन्दर 8रिक्टर भूकंप तेजी से आया। ऐसी दरार जिसमें हिमालय-जैसा पर्वत समाहित हो जाय। अनेकों द्वीप समाहित हो गये, मनुष्यों की तो गिनती नहीं। इस घटना से ज्ञात हुआ कि भूमि पर क्या-क्या होता है। सुनामी लहरें आने का ज्ञान हाथियों को हो गया। घटना के पूर्व वे उस स्थान से स्थानान्तरित हो गये। आपको राडार की व्यवस्था हो रही, मूक प्राणियों के पास पहले से राडार थे। राडार मतलब ज्ञान। जो भी सुख-दुःख है, उसी ज्ञान पर आधारित है। यदि ज्ञान नहीं होता तो न सुख है, न दुःख है।

प्रस्तुति : मुकेश शाह एडवोकेट एवं जयकुमार जैन 'जलज' हटा

मई 2005

मासिक
जिनभाषित

वर्ष 4, अङ्क 3

सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन



कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(आर.के. मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)

श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर



प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.
सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।	

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ प्रवचन

- जानें व्यक्ति का स्वभाव : आचार्य श्री विद्यासागर जी आव.पृ.2
- समृद्धि सृजन से होगी : मुनिश्री समतासागर जी 3
संहार से नहीं
- मुक्ति के प्रति अनुराग : मुनिश्री प्रमाणसागर जी आव.पृ.4
से ही आत्मकल्याण संभव है

◆ सम्पादकीय : जैन संस्कृत महाविद्यालय और
इक्कीसवीं शताब्दी 2

◆ लेख

- हमारी द्रव्य-पूजा का रहस्य : पं. वंशीधरजी व्याकरणाचार्य 5
- तीर्थंकर महावीर एवं एलबर्ट : प्रो. लक्ष्मीचंद्र जैन 10
आइंस्टाइन गणितीय सापेक्षता
- अध्यात्म और चिकित्सा विज्ञान : प्राचार्य निहालचन्द्र जैन 12
- ज्ञान एवं चारित्र्ययुक्त शिक्षा : डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 15
की आवश्यकता
- पूजा में प्रयुक्त प्रतीक : ब्र. भरत जैन 17
- भगवान महावीर के सिद्धांत : श्रीमती सुशीला पाटनी 20
- अन्तर्मन की पुकार : प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन 22
- जैन संस्कृत महाविद्यालयों : धर्मचंद्र वाझल्य 24
की दशा और दिशा : एक चिन्तन
- कानून के ऊपर कोई नहीं : जस्टिस पानाचंद जैन 25

◆ जिज्ञासा-समाधान

: पं. रतनलाल बैनाड़ा 27

◆ कविताएँ

- आओ मनायें आज जयंती : मनोज जैन 'मधुर' 19
- पर्यावरण-पद : श्रीपाल जैन 'दिवा' 21

◆ समाचार

29 से 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

जैन संस्कृत महाविद्यालय और इक्कीसवीं शताब्दी

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी, पं. गोपालदास जी वरैया और तत्कालीन स्थानीय दिगम्बर जैन समाज के श्रेष्ठियों ने जैन संस्कृत महाविद्यालयों की स्थापना की थी। प्रमुख महाविद्यालयों में हैं श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, जिसका शताब्दी समारोह मनाया जा रहा है और जयपुर स्थित श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय जिसका शताब्दी वर्ष 25 वर्ष पूर्व मनाया जा चुका है। ये दोनों महाविद्यालय देश में जैन संस्कृत महाविद्यालयों में प्रथम श्रेणी के महाविद्यालय माने जाते हैं। सम्प्रति जयपुर के महाविद्यालय में जैनदर्शन, साहित्य, प्राकृत अपभ्रंश एवं जैनागम और बौद्धदर्शन के लगभग 325 छात्र उपाध्याय, शास्त्री एवं आचार्य कक्षाओं में अध्ययनरत हैं। जहाँ पर पहले संस्कृत पढ़नेवाले छात्र वमुश्किल बहुत प्रेरणा देने पर मिलते थे, आज श्री दिग. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर एवं टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर को अपनी संस्थाओं में प्रवेश देने के लिये चयन शिविर लगाने पड़ते हैं, क्योंकि प्रवेश हेतु जितने छात्र अपेक्षित हैं उससे अधिक संख्या में छात्र प्रवेश लेने के इच्छुक रहते हैं। सांगानेर में तो यह स्थिति है कि वहाँ प्रवेश के हिसाब से स्थान निर्धारित करने पड़े हैं।

द्वितीय स्तर के महाविद्यालयों में श्री गोपालदास वरैया संस्कृत महाविद्यालय मुँरैना, श्री गणेश प्रसाद वर्णी दिग. जैन महाविद्यालय मोराजी सागर, श्री महावीर दिग. जैन संस्कृत महाविद्यालय सादूमल और श्री पार्श्वनाथ दिग. जैन विद्यालय वरुआसागर, जैन गुरुकुल आहारजी आदि माने जाते हैं।

विचारणीय है कि इतनी अच्छी संख्या में छात्र प्राच्यविद्या की ओर आकर्षित हैं। उक्त दोनों प्रथम श्रेणी के महाविद्यालयों में स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थिति छात्रसंख्या की दृष्टि से कमजोर हो गयी थी, परन्तु जबसे माननीय पं. बाबूलाल जी फागुल्ल एवं डॉ. फूलचन्द्र प्रेमी जी ने संस्था की ओर ध्यान दिया, तबसे छात्र संख्या में वृद्धि हुई और अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही है।

जयपुर-स्थित महाविद्यालय की स्थिति अति संतोषजनक है, क्योंकि राज्य सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली से अनुदान प्राप्त होने से शिक्षकों को अच्छा वेतन मिलता है और योग्य स्टाफ होने से योग्य छात्र भी तैयार हो रहे हैं।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के उपकार एवं योगदान को समाज कभी भुला नहीं सकता, क्योंकि उसने जैन समाज को अनेक मूर्धन्य विद्वान दिये हैं, जिनके कार्य आज भी स्मरण किये जा रहे हैं और वर्तमान पीढ़ी में जो विद्वान कार्य कर रहे हैं वे अधिकांशतः उसी संस्था के हैं। अभी जो विद्वान तैयार हो रहे हैं वे अधिकांशतः जयपुर, मुँरैना, सादूमल एवं वरुआसागर से हो रहे हैं। इन महाविद्यालयों में जो पाठ्यक्रम चल रहे हैं, वे सभी विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित हैं, जो सोच-समझकर तैयार किये जाते हैं। उन पाठ्यक्रमों को हम सभी विद्वान ही तैयार करते हैं। वर्तमान में केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा भी संस्कृत को बढ़ावा देने के लिये अधिकांश प्रदेशों में संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना की जा चुकी है। राजस्थान प्रांत में संस्कृत के छात्रों को सरकारी नौकरियों में वही स्थान दिया जाता है जो बी.ए., एम.ए. के छात्रों को दिया जाता है। स्याद्वाद महाविद्यालय से जो विद्वान अध्ययन कर कार्यक्षेत्र में हैं, वे सभी अच्छे स्थानों पर कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में जो जयपुर से छात्र तैयार हो रहे हैं उनमें 70 प्रतिशत छात्र सरकारी नौकरियों में हैं। 20 प्रतिशत ऐसे छात्र हैं, जो निज व्यवसाय में हैं। मात्र 10 प्रतिशत छात्र समाज पर आश्रित संस्थाओं में कार्य कर रहे हैं।

अतः उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान में संस्कृत के छात्रों का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि संस्कृत महाविद्यालयों में व्यवस्थित पाठ्यक्रम के साथ आधुनिक पाठ्यक्रम का भी समावेश है। बोर्ड एवं विश्वविद्यालयों ने कम्प्यूटर शिक्षा का भी समावेश किया है। जिसके कारण, संस्कृत छात्र भी कम्पनियों की नौकरियों में आकर्षित हो रहे हैं। सभी उत्तीर्ण छात्र आई.ए.एस. और एम.बी.ए. जैसी परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर नौकरियों में जा रहे हैं। आज बी.ए., एम.ए., बी.एस.सी. आदि डिग्रीधारी छात्र बेरोजगारी की पंक्ति में हैं, परन्तु शास्त्री, आचार्य उत्तीर्ण छात्रों की स्थिति वैसी नहीं है। अतः संस्कृत के छात्रों की दशा एवं दिशा बहुत ही अच्छी स्थिति में है, क्योंकि इन छात्रों की पेटपूजा के साथ पैरपूजा भी हो रही है, और इस लोक के साथ परलोक भी सुधर रहा है। समाज को चाहिये कि अपने बच्चों को संस्कृत के क्षेत्र में भी पढ़ने की प्रेरणा दे, जिससे वे आदर्श नागरिक बनकर समाज एवं देश की सेवा कर सकें।

डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर

समृद्धि सृजन से होगी, संहार से नहीं

मण्डला म. प्र.में गजरथ महोत्सव के अवसर पर दिया गया प्रवचन

मुनि श्री समतासागर जी

भारतीय संस्कृति करुणा प्रधान संस्कृति है। करुणा की कहानी यहां की माटी और पानी में घुली मिली है। राम, महावीर, कृष्ण, गौतम, नानक और गांधी के देश में सदा-सदा से प्राणियों की रक्षा को धर्म कहा गया है। सर्व धर्मों की सार अहिंसा भारतीय संस्कृति की आत्मा है। विचार, वाणी और कर्म से किसी प्राणी को कष्ट पहुंचाना अहिंसा को स्वीकार नहीं है। 'जियो और जीने दो' की श्वास लेनेवाली अहिंसा जब तक धरती पर है, तभी तक देश का अस्तित्व है। देश में जिस तरह स्वतंत्रता से जीने और रहने का अधिकार हमें है, उसी प्रकार जीने और रहने का अधिकार पशुओं को भी है। पशु भी हमारे समान सुख-दुःख का अनुभव करते हैं, प्राण/संवेदना उनके अंदर भी है। यह बात अलग है कि हमारे पास सुख-दुःख व्यक्त करने के लिए जुबान है, भाषा है, किन्तु पशु जुबान से रहित हैं, उनके पास हमारे जैसी भाषा नहीं है। यह हमें समझना चाहिए कि पशु बेजुबान तो हैं, लेकिन बेजान नहीं। हमारी जुबान और जवानी तो इसी में सार्थक है कि हम पशुओं की पीड़ा को पहचानें और उसकी रक्षा करें।

जैनतीर्थंकर श्री नेमिनाथ ने बाड़ी में घिरे पशुओं का करुणा क्रन्दन सुनकर उनकी रक्षा के लिए सारा जीवन समर्पित कर दिया। पशु-बलि प्रथा बंद कराने के लिए महावीर ने तो करुणा की क्रांति ही खड़ी कर दी थी। गायों की रक्षा के लिए नारायण श्रीकृष्ण ने समूचा गोवर्धन पर्वत ही ऊपर उठा लिया। वाण-विद्ध कौंच युगल की पीड़ा ने बाल्मीकि में रामत्व जगा दिया था और उन्हें आद्य रामायण के रचयिता महर्षि बाल्मीकि बना दिया। राजकुमार सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) और देवदत्त का संदर्भ मन को झकझोरनेवाला है। देवदत्त ने हंस को घायल कर दिया था, राजकुमार सिद्धार्थ ने उसे बचाया। अब हंस पर अधिकार किसका? यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ। उनके पिताश्री महाराज शुद्धोधन ने न्याय दिया कि मारनेवाले से बचानेवाला बड़ा होता है, इसलिए इस पर सिद्धार्थ का अधिकार है। एक कबूतर के प्राणों की रक्षा में महाराजा शिवि ने अपना सारा शरीर ही तुला पर चढ़ा दिया था। यह सब क्या संदेश देते हैं? विचार करने की जरूरत है। हिन्दुस्तान के प्राणसाधक माने जाने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि 'किसी भी राष्ट्र की महानता और उसकी नैतिक प्रगति का मापदंड पशुओं के प्रति उसका व्यवहार है' इस संदेश-वाक्य से हम अपने देश की प्रगति का अंदाज लगा सकते हैं।

हमारा देश स्वतंत्र हुआ। हम प्रगति के पथ पर निरंतर आगे बढ़ रहे हैं। हम सभी अपने देश को समृद्ध और खुशहाल देखना चाहते हैं। विचारणीय बात तो यह है कि देश की समृद्धि कैसे हो? आज देश को समृद्ध बनाने के लिए जिस नीति का निर्धारण हो रहा है, प्रोत्साहन/बढ़ावा मिल रहा है वह नैतिकता, मानवता अथवा पर्यावरण रूप किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। वस्तु-विनिमय का नाम व्यापार है, जीवित पशुओं को बेचना-खरीदना अथवा मरे हुए जानवर के अवयवों का उपयोग करना, यहां तक व्यापार को स्वीकारा जा सकता है, किन्तु पशु-पक्षियों को मारकर उनका मांस निर्यात करना यह कौन-सा व्यापार है और पाप, हिंसा, हत्या को कभी व्यापार नहीं माना जा सकता। बीज बोया जाएगा तो धरती हरी होगी, देश खुशहाल होगा और पशु का कत्ल होगा तो धरती रक्तंजित होगी, देश कंगाल होगा। कृषक और बधिक के कर्म में भारी अंतर है। कृषि और कत्ल को कभी एक दर्जा नहीं दिया जा सकता। एक में सृजन है और एक में संहार। देश की समृद्धि सृजन से होगी, संहार से नहीं। अतः देश की समृद्धि के लिए कृषि और कारखानों की जरूरत है, कत्लखानों की नहीं। क्योंकि कत्लखाने, कत्लखाने हैं, कारखाने नहीं। कत्लखानों को कारखानों का दर्जा दिया ही नहीं जा सकता। पर स्वतंत्र भारत की अंधी सरकारें कत्लखानों को भी कारखाने मानकर चला रही हैं। तभी तो आजादी के समय भारत भूमि पर मात्र तीन सौ कत्लखाने थे, परन्तु बढ़कर आज वह 3631 की संख्या में पहुंच गये हैं। यह वैध कत्लखानों की संख्या है, अवैध का तो पता ही नहीं। आंकड़ों से पता चलता है कि सन् 1947 आजादी के स्वर्णिम प्रभात में हमारे देश में पशुओं की संख्या 36 करोड़ थी तथा मनुष्यों की आबादी मात्र 27 करोड़ थी। जबकि आज हमने आजादी के पचास वर्ष पार कर लिये हैं तब मनुष्यों की आबादी लगभग एक अरब है जबकि पशु संपदा घटकर मात्र 10-11 करोड़ रह गई है। यह सब क्यों हुआ? सिर्फ विदेशी मुद्रा पाने के लोभ में? कहा जाता है कि भारत सोने की चिड़िया था तो मैं कहता हूँ कि भारत था नहीं आज भी सोने की चिड़िया है। अपने देश की चिड़िया (प्राणी संपदा) की रक्षा कर लो तो बस भारत आज भी सोने की चिड़िया है। हम हैं कि सोने (विदेशी मुद्रा) के लोभ में अपने देश की चिड़िया (पशु संपदा) का संहार कर रहे हैं। आज देश के सभी महानगरों में निर्यातोन्मुख बड़े-बड़े कत्लखाने खुल गये हैं। दिल्ली में ईदगाह, बम्बई में देवनार, हैदराबाद में अलकबीर,

कलकत्ता में टंगरा और गार्डन रिज, मद्रास में पैराम्बूर, सैदापेट एवं कोडुंगियर है। जिनमें प्रतिदिन 1 लाख 50 हजार पशु मौत के घाट उतार दिये जाते हैं। अहिंसा की इस भूमि पर हिंसा का यह तांडव कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है? हिंसा की ये मशीनें कत्लखानों में निरन्तर चल रही हैं। अन्य देशों के कत्लखाने तो फिर भी किसी न किसी दिन बंद रखे जाते हैं- जानकारियाँ कहती हैं कि जापान, आयरलैंड, फ्रांस, पोलेण्ड और इंडोनेशिया में प्रत्येक रविवार; सीरिया, अरब में हर शुक्रवार, आस्ट्रिया और जर्मनी में हर शनिवार व रविवार, पाकिस्तान में प्रत्येक मंगलवार व बुधवार तथा श्रीलंका में प्रतिपदा अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को कत्लखाने पूर्णतः बंद रखे जाते हैं। पर इस देश में ऐसा कोई भी दिन सुनिश्चित नहीं है कि जिसमें कत्लखाने बंद रखे जाते हों। इमारती लकड़ी सागौन का एक पेड़ कटता है तो काटनेवालों को सजा दी जाती है और यहां सरेआम पशु काटे जा रहे हैं उन्हें कोई भी सजा नहीं। गहन अनुसंधान के बाद तो वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि भूकंप आने में एक कारण कत्लखानों में होनेवाली पशुहिंसा भी है। पशुओं की पीड़ा की तरंगों से धरती में कंपन होता है और यह कंपन भी भूकंप का कारण बनता है। जंगली पशुओं की सुरक्षा के लिए तो फिर अभ्यारण्य बन गये, पर पालतू पशुओं की क्या सुरक्षा? इस धरती पर अब पालतू पशुओं के लिये भी अभ्यारण्य खुलने चाहिये। देश के महानगरों में यदि बड़े-बड़े कत्लखाने सरकार ने खुलवा दिये, तो अभ्यारण्य के रूप में बड़ी-बड़ी गौशालायें भी उन स्थानों पर खुलनी चाहिये। अब तो एग्रीकल्चर का ही अर्थ बदला जा रहा है। अण्डों की खेती, मछलियों की खेती, केचुओं की खेती, सुअर की खेती। क्या फार्मिंग (खेती) का अर्थ यही है? एग्रीकल्चर का भले ही अब यह अर्थ निकाला जा रहा है, पर अनीतिरूप कल्चर से हम कभी एग्री (सहमत) नहीं होंगे।

पशु-संहार और फिर विदेशों के लिए मांस-निर्यात भारतीय संस्कृति के लिए कलंक है। यह विषय मांसाहार का नहीं, मांस-निर्यात (व्यापार) का है। खाना तो अपनी व्यक्तिगत परिस्थिति या विचारधारा हो सकती है, जिसे सात्विक और शुद्ध भोजन की प्रेरणा देकर, हृदय परिवर्तित कर बदला जा सकता है, उसे किसी अभियान या आंदोलन की जरूरत नहीं। किन्तु मांस-निर्यात जैसी निन्दनीय नीति को बदलने के लिए सशक्त आंदोलन होना चाहिये। यह बात भी समझने जैसी है कि हिन्दुस्तान के समस्त मांसाहारीजनों के लिए भी इतने कत्लखानों की जरूरत नहीं है। यह सब तो विदेशों की पूर्ति के लिए है। इस विषय में कोई व्यक्ति तर्क देता है कि बूढ़े और अनुपयोगी पशु हो जाने पर उनका क्या उपयोग? पर यदि ऐसा ही है तो

माता-पिता के बूढ़े और अनुपयोगी हो जाने पर उन्हें भी कत्लखाने भिजवा दिया जाय? पर यह संभव नहीं है। तथ्य तो यह है कि कोई भी पशु कभी भी, किसी स्थिति में अनुपयोगी नहीं होता। वह आपसे जितना लेता है, जीवन के आखिरी क्षणों तक उससे भी ज्यादा देकर जाता है। गौवंश तो कितना क्या देता है, हम सभी जानते हैं, इसलिए इस धरती पर गौवंश की, पशुसंपदा की और पेड़-पौधों की रक्षा होनी चाहिये। धरती वधशाला विहीन हो ऐसा संकल्प-अभियान छोड़ा जाना चाहिये।

इस संदर्भ में यदि कोई ये तर्क देता है कि यह सब बंद हो जायेगा तो अनेक लोगों की आजीविका छिन जायेगी, वह भूखे मर जायेंगे, तो इसका समाधान यह है कि हम तो अपने चूहे को बचा रहे हैं; क्योंकि बिल्ली चूहे के बिना फिर भी पेट भर सकती है, पर बिल्ली की खुराक में यदि चूहा चला गया तो फिर हमारे पास कुछ नहीं बचेगा।

मेरे गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के करुण हृदय से मांस-निर्यात के प्रतिबंध की यह आवाज निकली और यह अभियान का रूप लेती जा रही है। उनका उद्घोष है कि मांस-निर्यात नीति पर प्रतिबंध ही देशोत्थान का मंगलाचरण है। आचार्यश्री का कहना है कि मांसनिर्यात नीति पर प्रतिबंध का कार्य पक्ष-विपक्ष की राजनीति से हटकर हो। पार्टीगत राजनीति से परे इसे एक सामूहिक आह्वान का स्वरूप देना चाहिये, क्योंकि यह कार्य सत्ता-संघर्ष का कोई राजनैतिक मुद्दा नहीं, अपितु लाखों-लाख पशुओं की करुण पुकार है, उनकी जीवन रक्षा का सवाल है। इस अभियान में किसी एक की आवाज नहीं, बल्कि समस्त धर्माचारियों की आवाज है। उन सभी का समर्थन/सहयोग ही इस अभियान को गति प्रदान कर रहा है। इस विषय की गंभीरता को समस्त बौद्धिकवर्ग, व्यापारीवर्ग एवं कृषकवर्ग समझें तथा इसे आगे बढ़ाने में अपने समय और श्रम का दान करें।

सद्भावना से भरा यह अभिवादन अहिंसा की ज्योति को जलाये रखने लिए है। इस ज्योति को सतत् जलते रखने के लिए सत्ता/सरकार चिमनी बनकर सहायक हो, आँधी बनकर बुझाये नहीं। अर्थोपार्जन की आँधी-आँधी में यह ज्योति बुझने न पाये। इसलिए जाति, वर्ग और सम्प्रदाय के भेदभाव से परे समूची जनशक्ति को जागने की जरूरत है। जागृत जन-शक्ति ही धरती पर परिवर्तन लाती है। हम अपनी प्राचीन संस्कृति को पहचानें और अपने देश से होनेवाले क्रूरतापूर्ण मांसनिर्यात के प्रतिबंध में सम्पूर्ण शक्ति को लगायें, ताकि फिर हमारा देश सात समन्दर पार धरती तक अपनी करुणा का, करुणा के संदेशों का निर्यात करे।

प्रस्तुति : अशोक कौछल मण्डला, (MO PRO)

हमारी द्रव्य-पूजाका रहस्य

स्व. पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य

पूजाका अर्थ भक्ति, सत्कार या सम्मान होता है और वह छोटी-छोटी बड़ों (पूज्यों) के प्रति प्रकट किया जाता है। इसका मूलकारण पूजक को अपनी लघुता और पूज्यकी महत्ताको स्वीकार करना है तथा उद्देश्य अपनी लघुता को नष्ट कर पूज्य जैसी महत्ता की प्राप्ति में प्रयत्न करना है। इसके प्रकट करने के साधन मन, वचन और काय तो हैं ही, परन्तु कहीं-कहीं बाह्य सामग्री भी इसमें साधनभूत हो जाया करती हैं। जहाँ पर मन, वचन और कायके साथ बाह्य सामग्री इसमें साधनभूत हो, उसका नाम द्रव्यपूजा है तथा जहाँ केवल मन, वचन और कायसे ही भक्ति-प्रदर्शन किया जाय उसे भावपूजा समझना चाहिये। वैसे तो मनके द्वारा भक्तिप्रदर्शन भावपूजा तथा वचन और कायके द्वारा भक्ति-प्रदर्शन द्रव्यपूजा कही जा सकती है, परन्तु यहाँ पर इस प्रकार की द्रव्यपूजा और भावपूजा की विवक्षा नहीं है। शास्त्रों में जो द्रव्यपूजा और भावपूजा का उल्लेख आता है, वह क्रमसे बाह्य सामग्री की अपेक्षा और अनपेक्षा में ही आता है।

उल्लिखित द्रव्यपूजाका लोकव्यवहार में समावेश तो परंपरागत कहा जा सकता है। अपने से बड़े पुरुषों को उनकी प्रसन्नता के लिये उत्तमोत्तम सामग्री भेंट करना शिष्टाचार में शामिल है। भगवदाराधन में भी कबसे इसका उपयोग हुआ, इसकी गवेषणा यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से की जा सकती है, लेकिन यहाँ पर इसकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो सिर्फ इस बात को प्रकट करना है कि हमारे यहाँ ईश्वरोपासना में द्रव्यपूजा का जो प्रकार है वह किस अर्थको लिये हुए है। यद्यपि मेरे विचारों के अनुसार शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख तो जहाँ तक है, नहीं मिलता है। परन्तु पूजापाठों के अवतरण, अभिषेक व जयमाला आदि भागों में मेरे इन विचारों का आभास जरूर है। और फिर यह तो ध्यान में रखना ही चाहिये कि जो विचार युक्ति और अनुभव विरुद्ध नहीं, वे शास्त्रबाह्य नहीं कहे जा सकते। इसी विचार से मैं अपने विचारों को प्रकट करने के लिये बाध्य हुआ हूँ।

शास्त्रों में द्रव्यपूजा का अष्टद्रव्य से करने का विधान पाया जाता है और हमारा श्रद्धालु समाज बिना किसी तर्क-वितर्क के निःसंकोच अर्हन्त, सिद्ध, गुरु, शास्त्र, धर्म, व्रत, रत्नत्रय, तीर्थस्थान आदि की पूजा करते समय निश्चित अष्टद्रव्यों को उपयोग में लाता है। समाज के उदार हृदय में यह विचार ही पैदा नहीं होता कि ये वस्तुयें जिसके लिये

अर्पण की जा रही हैं वह जड़ है या चेतन है अथवा आत्मा की अवस्थाविशेष है। अरहन्त, सिद्ध, शास्त्र, धर्म, व्रत, रत्नत्रय व तीर्थस्थानों को जलादि अष्टद्रव्यका अर्पण करना बुद्धिगम्य कहा जा सकता है या नहीं? परन्तु तर्कशील लोगों ने इसके ऊपर हमेशा से आक्षेप उठाये हैं और वे आज भी उठाते चले जा रहे हैं। उन आक्षेपों का यथोचित समाधान न होने के कारण ही एक संप्रदाय में मूर्तिमान्यता के विरोधी दलों का अविष्कार हुआ है। जैनियों के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में दूँढिया पंथ और दिगम्बर सम्प्रदाय में तारण पंथ इन आक्षेपों के समाधान न होने के ही फल हैं। केवल जैनीयों में ही नहीं, जैनेतरों में भी इस प्रकार के पंथ कायम हुए हैं, परन्तु यह संभव है कि जैनेतरों में विरोध के कारण जैनियों से भिन्न हैं।

कुछ भी हो, परन्तु जैन सिद्धान्त इस बात को नहीं मानता कि जो द्रव्य भगवान के लिये अर्पण किया जाता है वह उनकी तृप्तिका कारण होता है, कारण कि उनमें इच्छा का सर्वथा अभाव है। इसलिये कोई भी बाह्य वस्तु उनकी तृप्ति का कारण नहीं हो सकती, उनकी तृप्ति तो स्वाभाविक ही है। इसलिये अपने विचारों व आचरणों को पवित्र व उन्नत बनाने के लिये भगवान के गुणों का स्मरण (भावपूजा) ही पर्याप्त है। भगवान-के गुणस्मरण में मूर्ति सहायक है, मूर्तिको देखकर गुणस्मरण में हृदय का झुकाव सरलता से हो जाता है। इसलिये भगवान के गुणों का स्मरण करते समय मूर्ति का अवलम्बन युक्ति और अनुभव विरुद्ध नहीं, परन्तु ऊपर बतलाये हुये उद्देश्य की सिद्धि में जब बाह्य सामग्रीका कोई उपयोग नहीं, तब भगवदाराधन में बाह्य सामग्री का समावेश क्यों किया गया है? इस आक्षेपका यथोचित समाधान न मिलने के कारण जैनियों में द्रव्यपूजा के बजाय मूर्ति मान्यता के विरोधी पंथ बन गये हैं।

तात्पर्य यह कि मूर्तिकी मान्यता को अनिवार्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्थान है। यह निश्चित है कि मूर्तिमान्यता के विरोधी स्वयं मूर्ति की मान्यता को छोड़ नहीं सकते, बल्कि आवश्यकतानुसार उसका उपयोग ही करते रहते हैं। मूर्ति मुख्य-वस्तुका प्रतिनिधि होती है, जो हमको मुख्य-वस्तु के किसी निश्चित उद्दिष्ट स्वरूप तक पहुँचाने में समर्थ है। किसी वस्तु का प्रतिनिधि आवश्यकता व उद्देश्य के अनुकूल सचेतन व अचेतन दोनों पदार्थ हो सकते हैं। एक वस्तु के समझने में जो दृष्टान्त बगैरह का उपयोग किया

जाता है, उससे मूर्ति-मान्यता का अकाट्य समर्थन होता है। परन्तु द्रव्यपूजा के विषय में कई तरह के आक्षेप उठाये जा सकते हैं, जिनका समाधान हो जाने पर ही द्रव्यपूजा उपयोगी मानी जा सकती है। नीचे सम्भावित आक्षेपों के समाधान करने का ही प्रयत्न किया जाता है।

आक्षेप 1 : जबकि भगवान में इच्छा का सर्वथा अभाव है, तो उनके उद्देश्य से मूर्ति के समक्ष मंत्रोच्चारण-पूर्वक नाना उत्तमोत्तम पदार्थ रख देनेपर भी वे उनकी तृप्ति के कारण नहीं हो सकते। मूर्ति तो स्वयं अचेतन पदार्थ है, इसलिये उसके उद्देश्य से इन पदार्थों के अर्पण करने की भावना ही पूजक के हृदय में पैदा नहीं हो सकती और न वह इस अभिप्राय से ऐसा करता ही है। इसलिये भगवान की पूजा अष्टद्रव्य से (द्रव्यपूजा) नहीं करनी चाहिए।

इस आक्षेप का समाधान कई प्रकार से किया जाता है। परन्तु वे प्रकार सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। जैसे-

समाधान 1 : जिनेन्द्र भगवान तृषा आदि दोषों के विजयी हैं। इसलिये वे हमारे तृषा आदि दोषों के नष्ट करने में सहायक हों, इस उद्देश्य से पूजक उनकी मूर्ति के समक्ष अष्टद्रव्य अर्पण करता है।

आलोचना : यह तो माना जा सकता है कि जिनेन्द्र भगवान तृषा आदि दोषों के विजयी हैं, परन्तु उनको अष्टद्रव्य चढ़ा देने मात्र से हमारे दोष भी नष्ट हो जायेंगे, यह बात तर्क और अनुभव की कसौटी पर नहीं टिक सकती।

समाधान 2 : जिनेन्द्र भगवान को अष्टद्रव्य इसलिए चढ़ाये जाते हैं कि इसके द्वारा पूजक में बाह्य वस्तुओं से रागपरिणति घटकर त्यागबुद्धि पैदा हो जाती है, जो कि तृषा आदि दोषों के नाश करने का प्रधान कारण है।

आलोचना : यह समाधान भी ठीक नहीं, कारण कि शास्त्रों का स्वाध्याय, विद्वानों के उपदेश व जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्मरण आदि ही बाह्य वस्तु में हमारी रागपरिणति घटाने व त्यागबुद्धि पैदा करने के यथोचित कारण हो सकते हैं।

समाधान 3 : दान की परिपाटी चलाने के लिए यह एक निमित्त है।

आलोचना : ऐसे निरर्थक दान (जिनका कि कोई उपयोग नहीं) की कोई सराहना नहीं करेगा। वास्तविक दान बाह्य वस्तुओं में अपनी ममत्व बुद्धि को नष्ट करना हो सकता है। यह तो हम करते नहीं और न इस तरह से यह नष्ट की जा सकती है। यह तो शास्त्रस्वाध्याय, उपदेश व जिनेन्द्र भगवान के गुणस्मरण आदि से ही होगी, ऐसा पहले बतलाया

जा चुका है। व्यावहारिक दान दूसरे प्राणियों की आवश्यकताओं की यथाशक्ति पूर्ति कराना कहा जाता है। जिनेन्द्र भगवान कृतकृत्य हैं, उनकी कोई ऐसी आवश्यकता नहीं जिसकी पूर्ति हमारे अष्टद्रव्य के अर्पण करने से होती हो। इसलिए ऐसा दान निरर्थक ही माना जायगा।

समाधान 4 : भगवान के गुणस्मरण में बाह्य सामग्री से सहायता मिलती है, इसलिए पूजक भगवान-को अष्टद्रव्य अर्पण करता है।

आलोचना : गुणस्मरण का अवलम्बन मूर्ति तो है ही तथा स्तोत्रपाठ वगैरह से गुण-स्मरण किया जाता ही है, बाह्य सामग्री की उपादेयता इसमें कुछ भी नहीं है। बल्कि जब पूजक भगवान के लिये अष्टद्रव्य अर्पण करता है तो यह द्रव्यपूजा उनकी वीतरागता को नष्ट कर उनको सरागी सिद्ध करने की ही कोशिश है।

समाधान 5 : पूजक भक्ति के आवेश में यह सब किया करता है। इसका ध्यान इसकी हेयोपादेयता तक पहुँचता ही नहीं और न भक्ति में यह आवश्यक ही है। इसलिये द्रव्यपूजा के विषय में किसी तरह के आक्षेपों का उठाना ही व्यर्थ है।

आलोचना : भक्ति में विवेक जाग्रत रहता है, विवेकशून्य भक्ति हो ही नहीं सकती। जहाँ विवेक नहीं है उसको भक्ति न कहकर मोह ही कहा जायगा। इसलिए यह समाधान भी उचित नहीं माना जा सकता है।

इसके पहले कि इस आक्षेप का समाधान किया जाय, दूसरे आक्षेपों पर भी दृष्टि डाल लेना आवश्यक है—

आक्षेप 2 : प्रतिमा में जब भगवान की स्थापना की जा चुकी है और वह पूजक के सामने है, तो फिर अवतरण, स्थापन और सन्निधिकरण की क्या आवश्यकता रह जाती है?

समाधान : जिनकी प्रतिमा पूजक के सामने है, उनकी पूजा करते समय अवतरण, स्थापन और सन्निधिकरण नहीं करना चाहिये, लेकिन जिनकी पूजा उनकी प्रतिमा के अभाव में भी यदि पूजक करना चाहता है, तो उनकी अतदाकार स्थापना पुष्पों में कर लेना आवश्यक है, इसलिये अवतरण, स्थापना और सन्निधिकरण की क्रिया करने का विधान बतलाया गया है।

आलोचना : एक तो यह कि किन्हीं भी भगवान की पूजा करते समय—चाहे उनकी प्रतिमा सामने हो, या न हो—समान रूप से अवतरण आदि तीनों क्रियायें की जाती हैं। इसलिये बिना प्रबल आधार के यह मानना अनुचित है

कि जिनकी प्रतिमा न हो, उनकी पूजा करते समय ही पुष्पों में अतदाकार स्थापना के लिए अवतरण आदि क्रियायें करनी चाहिये।

दूसरे यह कि जब पूजक अपने भावों की स्थिरता के लिए केवल भगवान की पुष्पों में अतदाकार स्थापना करता है, तो इतना अभिप्राय स्थापन और सन्निधिकरण में से किसी एक क्रिया से ही सिद्ध हो सकता है। इन दोनों में से कोई एक तथा अवतरण की क्रिया निरर्थक ही मानी जायगी। इस समाधान को मानने से स्थापन और सन्निधिकरण दोनों का एक स्थान में प्रयोग लोक-व्यवहार की दृष्टि से अनुचित मालूम पड़ता है। लोकव्यवहार में जहाँ समानता का व्यवहार है, वहाँ तो पहले “आइये बैठिये” कहकर, “यहाँ पास में बैठिये” ऐसा कहा जा सकता है, परन्तु अपने से बड़ों के प्रति ऐसा व्यवहार कभी नहीं किया जायगा।

बहुत से लोग “मम सन्निहितो भव” इस वाक्य का अर्थ करते हैं- “हे भगवान! मेरे हृदय में विराजो,” लेकिन यह अर्थ भी ठीक मालूम नहीं पड़ता है, कारण कि एक तो इधर हम पुष्पों में भगवान का आरोप कर रहे हैं और उधर उनको हृदय में स्थान दे रहे हैं, ये दोनों बातें विरोधी हैं। दूसरे, पूजक हृदय में स्थापित भगवान को लक्ष्य करके द्रव्य नहीं चढ़ाता, उसका लक्ष्य तो उस समय प्रतिमा की ओर ही रहता है। इसलिये दूसरे आक्षेप का भी समाधान ठीक-ठीक नहीं होता है।

आक्षेप 3 : भगवान क्या हमारे बुलाने से आते हैं और हमारे विसर्जन करने पर चले जाते हैं ? यदि हाँ, तो जैन सिद्धान्त से इसमें जो विरोध आता है उसका क्या परिहार होगा ? यदि नहीं, तो फिर अवतरण व विसर्जन करने का क्या अभिप्राय है ?

आक्षेप 4 : आजकल जो प्रतिमायें पायी जाती हैं उनको यदि हम अरहन्त व सिद्ध अवस्था की मानते हैं तो इन अवस्थाओं में अभिषेक करना क्या अनुचित नहीं माना जाएगा ? यह आक्षेप अभी थोड़े दिन पहले किसी महाशय ने जैनमित्र में भी प्रकट किया है।

ये चारों आक्षेप बड़े महत्व के हैं, इसलिए यदि इनका समाधान ठीक तरह से नहीं हो सकता है, तो निश्चित समझना चाहिये कि हमारी द्रव्यपूजा तर्क एवं अनुभव से गम्य न होने के कारण उपादेय नहीं हो सकती है। परन्तु उद्देश्य की सफलता के लिये रत्नत्रयवाद, पदार्थों की व्यवस्था के लिए निक्षेपवाद तथा उनके ठीक-ठीक ज्ञानके लिए प्रमाणवाद और नयवाद तथा अनेकान्तवाद,

आदि का तर्क और अनुभवपूर्ण व्यस्थापक जैनधर्म इस विषय में अधूरा ही रहेगा, यह एक आश्चर्य की बात होगी। इसलिये मेरे विचार से जैन सिद्धान्तानुसार द्रव्यपूजा का जो रहस्य होना चाहिये, वह नीचे लिखा जाता है।

द्रव्यपूजा निम्नलिखित सात अंगों में समाप्त होती है—

1 अवतरण, 2 स्थापन, 3 सन्निधिकरण, 4 अभिषेक, 5 अष्टक, 6 जयमाला, 7 विसर्जन। शान्तिपाठ व स्तुतिपाठ जयमाला के बाद उसीका एक अंग समझना चाहिये। यद्यपि अभिषेक की क्रिया हमारे यहाँ अवतरण के पहले की जाती है, परन्तु यह विधान शास्त्रोक्त नहीं। शास्त्रों में सन्निधिकरण के बाद ही चौथे नंबर पर अभिषेक की क्रिया का विधान मिलता है। द्रव्यपूजा के ये सातों अंग हमको तीर्थकर के गर्भ से लेकर मुक्ति-पर्यन्त महात्म्य के दिग्दर्शन कराने, धार्मिक व्यवस्था कायम रखने व अपना कल्याणमार्ग निश्चित करने के लिए हैं, ऐसा समझना चाहिए।

यह निश्चित बात है कि संसार में जिसका व्यक्तित्व मान्य होता है, वही व्यक्ति लोकोपकार करने में समर्थ होता है, उसीका प्रभाव लोगों के हृदय को परिवर्तित कर सकता है। अतएव तीर्थकर के गर्भ में आने के पहले-से उनके विषय में असाधारण घटनाओं का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है। 15 मास असंख्य रत्नों की वृष्टि, जन्म-समय पर 1008 बड़े-बड़े कलशों द्वारा अभिषेक आदि क्रियायें उनके आश्चर्यकारी प्रभाव की द्योतक नहीं, तो और क्या हैं ? वर्तमान में हमलोग भी उनके व्यक्तित्व को समझने के लिये तथा आचार्यों द्वारा शास्त्रों में गूँथे हुए उनके उपदिष्ट कल्याणमार्ग पर विश्वास करने व उस पर चलने के लिए और ‘परंपरा में भी लोग कल्याणमार्ग से विमुख न हो जावें’ इसलिए भी साक्षात् तीर्थकरके अभाव में उनकी मूर्ति द्वारा उनके जीवन की असाधारण घटनाओं व वास्तविकताओं का चित्रण करने का प्रयत्न करें, यही द्रव्यपूजा के विधान का अभिप्राय है। हमारा यह प्रयत्न नित्य और नैमित्तिक दो तरह से हुआ करता है। नैमित्तिक प्रयत्न में तीर्थकर के पंच-कल्याणकों का बड़े समारोह के साथ विस्तारपूर्वक चित्रण किया जाता है तथा प्रतिदिन का हमारा यह प्रयत्न संक्षेप से आवश्यक क्रियाओं में ही समाप्त हो जाता है।

1. हमारी द्रव्यपूजा नित्य प्रत्यत्न में शामिल है। इसमें सबसे पहले अवतरण की क्रिया की जाती है। इस समय पूजक यह समझकर कि तीर्थकरपर्यायको धारण करने के सन्मुख विशिष्ट पुण्याधिकारी देव स्वर्ग से अवरोहण करनेवाला है, प्रतिमा में तीर्थकरके प्रागरूप का दर्शन करता

हुआ अपरिमित हर्ष से 'अत्र अवतर-अवतर' कहता हुआ पुष्पवर्षा करके अवतरण महोत्सव मनावे।

2. दूसरी क्रिया स्थापन की है। इस समय पूजक यह समझकर कि तीर्थकर माता के गर्भ में आ रहे हैं, प्रतिमा में गर्भ-प्रवेशोन्मुख तीर्थकरके रूप को देखता हुआ बड़े आनन्द के साथ "अत्र तिष्ठ-तिष्ठ" कहता हुआ पुष्पवर्षा करके गर्भ-स्थिति महोत्सव मनावे।

3. तीसरी क्रिया सन्निधिकरण की है। जिस प्रकार तीर्थकर का जन्म हो जानेपर अभिषेक के लिए सुमेरु पर्वतपर ले जाने के उद्देश्य से इन्द्र उनको अपनी गोद में लेता है, उसी प्रकार इस क्रिया के करते समय पूजक यह समझकर कि "तीर्थकर का जन्म हो गया है" प्रतिमा में जन्म के समय के तीर्थकर की कल्पना करता हुआ उनके जन्म-अभिषेक की क्रिया सम्पन्न करने के लिये "मम सन्निहितो भव-भव" कहकर पुष्पवर्षा करते हुए प्रतिमा को यथास्थान से उठाकर अपनी गोदी में लेता हुआ बड़े उत्साह के साथ सन्निधिकरण-महोत्सव मनावे।

इसके अनन्तर वह कल्पित-सुमेरु-पर्वत की कल्पित पांडुक शिलापर इस प्रतिमा को स्थापित करे।

4. चौथी क्रिया अभिषेक की है। इस समय पूजक घंटा, वादित्र आदि के शब्दों के बीच मंगलपाठ का उच्चारण करता हुआ बड़े समारोह के साथ प्रतिमा का अभिषेक करके तीर्थकर के जन्माभिषेक की क्रिया सम्पन्न करे।

ये चारों क्रियायें तीर्थकर के असाधारण महत्व को प्रकट करने वाली हैं। इनके द्वारा पूजक के हृदय में तीर्थकर के असाधारण व्यक्तित्व की गहरी छाप लगती है। इसलिये इनका समावेश द्रव्यपूजा में किया जाता है। इसके बाद तीर्थकर के गृहस्थ जीवन में भी कुछ उपयोगी घटनायें घटती हैं, परन्तु असाधारण व नियमित न होने के कारण उनका समावेश द्रव्यपूजा में नहीं किया गया है।

5. यह क्रिया अष्टद्रव्य के अर्पण करने की है। पूजक का कर्तव्य है कि वह इस समय प्रतिमा में तीर्थकर की निर्ग्रन्थ-मुनि-अवस्था की कल्पना करके आहारदान की प्रक्रिया सम्पन्न करने के लिए सामग्री चढ़ावे। तीर्थकर की निर्ग्रन्थ-मुनि-अवस्था में इसी तरह की पूजा उपादेय कही जा सकती है। इसलिए बाह्य सामग्री चढ़ाने का उपदेश शास्त्रों में पाया जाता है। इस क्रिया के द्वारा पूजक के हृदय में पात्रों के लिए दान देने की भावना पैदा हो, इस उद्देश्य से

ही इस क्रिया का विधान किया गया है।

किसी समय हम लोगों में यह रिवाज चालू था कि जो भोजन अपने घर पर अपने निमित्त से तैयार किया जाता था उसीका एक भाग भगवान की पूजा के काम में लाया जाता था, जिसका उद्देश्य यह था कि हम लोगों का आहार-पान शुद्ध रहे। परन्तु जबसे हम लोगों में आहारपान की शुद्धता के विषय में शिथिलाचारी हुई, तभी से वह प्रथा बन्द कर दी गई है। और मेरा जहाँ तक ख्याल है कि कहीं-कहीं अब भी यह प्रथा जारी है।

6. छठी क्रिया जयमाला की है। जयमाला का अर्थ गुणानुवाद होता है। गुणानुवाद तभी किया जा सकता है, जबकि विकास हो जावे। केवलज्ञान के हो जाने पर तीर्थकर के गुणों का परिपूर्ण विकास हो जाता है। इसलिए जयमाला पढ़ते समय पूजक प्रतिमा में केवलज्ञानी-सयोगी-अर्हन्त तीर्थकर की कल्पना करके उनके गुणों का अनुवाद करे। यही उस समय की पूजा है। तीर्थकर के सर्वज्ञपने, वीतरागपने और हितोपदेशीपने का भाव पूजक को होवे, यह उद्देश्य इस क्रिया के विधान का समझना चाहिये। यही कारण है कि जयमाला के बाद शान्तिपाठ के द्वारा जगत के कल्याण की प्रार्थना करते हुए पूजक को तदनन्तर प्रार्थना-पाठ के द्वारा आत्मकल्याण की भावना भगवान की प्रतिमा के सामने प्रगट करने का विधान पूजाविधि में पाया जाता है। जयमाला पढ़ने के बाद अर्घ्य चढ़ाने की जो प्रवृत्ति अपने यहाँ पायी जाती है, वह ठीक नहीं, क्योंकि अरहन्त-अवस्था में तीर्थकर कृतकृत्य, सर्वाभिलाषाओं से रहित होने के कारण हमारे द्वारा अर्पित किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करते हैं। अतएव केवल गुणानुवाद करके ही पूजक को यह क्रिया समाप्त करना चाहिए। इसके बाद वह जगत के कल्याण की भावना से शान्तिपाठ व इसके बाद आत्मकल्याण की भावना से स्तुतिपाठ पढ़े। ये दोनों बातें तीर्थकर की अरहन्त-अवस्था में ही सम्भव हो सकती हैं, कारण कि तीर्थकर का हितोपदेशीपना इसी अवस्था में पाया जाता है।

7. सातवीं क्रिया विसर्जन की है। इस समय पूजक यह समझकर कि भगवान की मुक्ति हो रही है, अपरिमित हर्ष से पुष्पवर्षा करता हुआ विसर्जन की क्रिया को समाप्त करे। जयमाला पढ़ते हुए भी यदि पुष्पवर्षा की जाय तो अनुचित नहीं, क्योंकि उससे हर्षातिरेक का बोध होता है, परन्तु अर्घ्य चढ़ाना तो पूर्वोक्त रीतिसे अनुचित ही है।

यह हमारी द्रव्यपूजा की विधि का अभिप्राय है और

पूजक को प्रतिदिन इसी अभिप्राय से द्रव्यपूजा में भाग लेना चाहिये। ऐसी प्रक्रिया तर्क और अनुभव-विरुद्ध नहीं कही जा सकती है। तथा जो चार आक्षेप पहले बतला आये हैं, उनका समाधान भी इसके जरिये हो जाता है। कारण कि प्रतिमा तीर्थकर की किसी अवस्था विशेष की नहीं है, वह तो सामान्यतौर पर तीर्थकर की प्रतिमा है। उसका अवलम्बन लेकर हमलोग अपने लिए उपयोगी तीर्थकर की स्वर्गावतरण से लेकर मुक्ति-पर्यन्त की जीवनी का चित्रण किया करते हैं। यदि हम अवतरण करते हैं तो तीर्थकर के स्वर्ग से चयन कर गर्भ में आते समय, यदि अभिषेक करते हैं तो तीर्थकर के जन्म के समय, यदि सामग्री चढ़ाते हैं तो तीर्थकर की साधु-अवस्था में। जिस तरह अवतरण द्वारा मुक्त तीर्थकर को हम बुलाते नहीं, उसी प्रकार विसर्जन के द्वारा भेजते भी नहीं, केवल विसर्जन के द्वारा मोक्ष-कल्याणक का उत्सव मनाया करते हैं। इस तरह पूर्वोक्त आक्षेपों के होने की सम्भावना भी हमारी द्रव्यपूजा की प्रक्रिया में नहीं रह जाती है।

ऐसा मान लेनेपर हमारा कर्तव्य हो जाता है कि सिद्धों की पूजा उनकी प्रतिमा का अवलम्बन लेकर केवल उनके स्वरूप का अनुवाद व चिन्तनमात्र से करें, तीर्थकर के समान अवतरण से लेकर विसर्जन-पर्यन्त की क्रियाओं का समारोह न करें, क्योंकि यह प्रक्रिया तो सिर्फ तीर्थकर की पूजा में ही सम्भव है। हमारे शास्त्र एक दूसरे प्रकार से भी उस अभिप्राय की पुष्टि करते हैं।

प्रतिमा जितनी बनाई जाती है, वे सब तीर्थकरों की बनायी जाती हैं और प्रतिष्ठा करते समय तीर्थकर के ही पाँच कल्याणकों का समारोह किया जाता है, क्योंकि तीर्थकर ही मोक्षमार्ग के प्रवर्तक हैं और उन्हीं के जीवन में वह असाधारणता (जिसका कि समारोह हम किया करते हैं) पायी जाती है। सामान्य केवलियों की इस तरह से प्रतिमायें प्रतिष्ठित नहीं की जातीं, क्योंकि वे मोक्षमार्ग के प्रवर्तक नहीं माने जाते और न उनका जीवन ही इतना असाधारण रहता है। केवल उन्होंने शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति कर ली है।

उनकी त्यागवृत्तिका ध्येय भी उनके जीवन में आत्मकल्याण रहा है। इसके लिये उनकी पूजा केवल सिद्ध-अवस्था को लक्ष्य करके की जाती है। यही कारण है कि सिद्ध प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा पंचकल्याणक रूप से न करके केवल मोक्ष-कल्याणक रूप से की जाती है। अरहन्त और सिद्ध को छोड़कर अन्य किसी की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करने का रिवाज हमारे यहाँ नहीं है। इसका कारण यह है कि आचार्य, उपाध्याय और मुनि ये तीनों सामान्य तौर से मुनि ही हैं। मुनियों का अस्तित्व शास्त्रों में पंचमकाल के अन्त तक बतलाया है, इसलिये हमारे कल्याणमार्ग का उपदेश, जो साक्षात् रूप से विद्यमान है, उसकी मूर्ति की आवश्यकता ही क्या रह जाती है? क्योंकि मूर्ति-प्रतिष्ठा का उद्देश्य तो अपने कल्याणमार्ग की प्राप्ति ही है। पूजा करते समय पूजक का कर्तव्य यह अवश्य है कि वह जिन तीर्थकर की प्रतिमा अपने समक्ष हो उनकी द्रव्यपूजा ऊपर कहे अभिप्राय को लेकर करे। जिनकी प्रतिमा न हो, उनकी पूजा यदि वह करना चाहता है, तो उनकी कल्पना दूसरे तीर्थकर की प्रतिमा में करके उनकी द्रव्यपूजा करे, क्योंकि जब हमारी पूजा ही कल्पनामय है, तो एक तीर्थकर की प्रतिमा में दूसरे तीर्थकर की कल्पना अपने भावों की विशुद्धि के लिये अनुचित नहीं कही जा सकती।

तथा जिस प्रकार सिद्धों की पूजा उनके स्वरूप का अनुवाद व चिन्तनमात्र ही युक्ति-अनुभवगम्य कही जा सकती है, उसी प्रकार शास्त्र की पूजा केवल उसकी वाँचना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेशरूप स्वाध्याय करना ही है। तीर्थक्षेत्रों की पूजा उनका अवलम्बन लेकर भगवान के गुणों की भावना मानना, रत्नत्रय की पूजा उनकी प्राप्ति का प्रयत्न करना, धर्म व व्रतों की पूजा उनका यथाशक्ति पालन करना समझना चाहिये। तीर्थकरों के समान उनकी अवतरण से लेकर विसर्जन पर्यन्त सात प्रकार से द्रव्यपूजा करना तो केवल हमारी तर्क और अनुभवकी शून्यता का द्योतक है। मुझे विश्वास है कि समाज इस तरह से पूजा के रहस्यों को समझकर इसमें सुधार करने का प्रयत्न करेगा।

‘पं. वंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दन ग्रन्थ’
से साभार

आचार्य विद्यासागर जी के सुभाषित

- सरलता और समता ही मेरा स्वभाव है, कुटिलता और ममता केवल विभाव।
- अध्यात्म की पृष्ठभूमि वहाँ से प्रारंभ होती है, जहाँ से दृष्टि में समता आती है।
- समता के साथ सुख का गठबंधन है।
- अध्यात्म का आनंद समता की गोद में है।

‘सागर बूँद समाय’

तीर्थंकर महावीर एवं एलबर्ट आइंस्टाइन के गणितीय सापेक्षता सिद्धांत, सूचना तंत्र एवं कर्म स्वरूप

प्रोफेसर लक्ष्मीचंद्र जैन

महावीर द्वारा प्रसारित जिनवाणी के रहस्यों के उद्घाटन द्वार की एक अल्प चर्चा हम इस लेख द्वारा प्रस्तुत करेंगे। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति महावीर और आइंस्टाइन के नामों से परिचित हैं, किन्तु उन्होंने प्रकृति की अनबुझ पहलियों में से कुछ को किस प्रकार सुलझाकर एक नवीन ज्ञान जगत का उद्घाटन किया, इसकी जानकारी दुर्लभ व जटिल है।

विश्व के इतिहास में जब विद्वानों के समक्ष कोई अनबुझ पहली ने उनके ज्ञान प्रसार में बाधा, क्राइसिस (Crisis) डाली, तभी किसी अद्भुत मस्तिष्क ने प्रकृति के किसी अज्ञात रहस्य को सामने लाकर एक नया मार्ग प्रशस्त कर दिया। तीर्थंकर महावीर के युग में जो जीवों में पारस्परिक सम्बन्ध संकट की स्थिति में पहुँच गये थे, उन्हें सुलझाने हेतु कर्म को गणितीय वस्तु में ढालकर जो मार्ग निर्मित किया गया उसमें भी सापेक्षता एवं सूचना तंत्र अपने गणितीय स्वरूपों को लेकर निखरते चले गये थे। ऐसा ही प्रारम्भ आइंस्टाइन के युग में तब हुआ जब माइकेलसन-मोरले नामक वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की निरपेक्ष गति को निकालने का प्रयास किया। यहीं से आइंस्टाइन ने जो सूचना तंत्र के रहस्य को खोला तो ज्ञात हुआ कि प्रकृति में एक ऐसा सापेक्षता सिद्धांत लागू होता है जो कल्पना के परे है। इस दिखाये गये विशिष्ट सापेक्षता के मार्ग में अणुबंधनों में छिपी शक्ति का प्रमाण भी मिल गया जिसने विश्व के राजनीतिज्ञों की गतिविधियों में क्रान्ति ला दी।

तीर्थंकर महावीर के पश्चात्, लगभग चतुर्थ सदी ईस्वीपूर्व में हुए इटली के जीनो (Zeno) ने सापेक्षता सम्बन्धी चार पहलियाँ प्रस्तुत की थीं जो देश और काल से सम्बन्धित थीं (देखिए, प्रस्तावना, महावीराचार्य कृत गणित सार संग्रह, सोलपुर, 1963)। इन अनबुझ पहलियों ने भी उस युग से लेकर अभी तक के विद्वानों के समक्ष जो चुनौती दी थी उसे कोई हल न कर सका था। उनका भी गणितीय स्वरूप था और उनमें भी जो रहस्य छिपा था उसे जिनवाणी के द्वारा सुलझाया जा सकता था। (वही, प्रस्तावना)

पृथ्वी की निरपेक्ष गति सम्बन्धी पहली को जब विश्व का कोई भी विद्वान सफल न हो सका तो आइंस्टाइन ने अपना प्रकृति का अज्ञात रहस्य खोलने हेतु गणितीय विशिष्ट सापेक्षता

का सिद्धांत (special theory of relativity) प्रस्तुत किया, जिसने उस पहली को निपटा दिया। यह वर्ष 1905 का था, जिसकी एक शताब्दी व्यतीत होने पर 2005 वर्ष को आइंस्टाइन वर्ष के रूप में अखिल विश्व में मनाया जा रहा है।

अब हम थोड़ी और गहराई में उतरें और देखें कि आइंस्टाइन ने इस पहली को किस प्रकार सापेक्षता सिद्धांत द्वारा बूझने का प्रयास किया! यहाँ महावीर की जिनवाणी का वह सापेक्षता सिद्धांत प्रयुक्त होता है जहाँ अल्पतम और महत्तम, या जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाणों की मर्यादाएं प्रकृति ने तय, निर्धारित करके रखी हैं, और उन अल्पतम से अल्पतर, तथा महत्तम से महत्तर प्रमाणों के अस्तित्व नहीं होते हैं। यदि समय अविभागी है तो वह अविभागी ही रहता है, गतियाँ जो मंदतम है उनसे मंदतर नहीं होती तथा जो महत्तम है उनसे महत्तर नहीं होती। आइंस्टाइन ने विशिष्ट सापेक्षता को इस प्रकार किया कि और सभी घटनाओं के सूचना तंत्र में गतियों की सापेक्षता बरकरार रहती है, किन्तु प्रकाश किरण या कण की गति में सापेक्षता भागीदारी नहीं रखती है। जहाँ जिस उद्गम से वह निकलती है, उसकी गति भी प्रकाश की गति में कोई परिवर्तन नहीं ला सकती है, अतः सभी गणनाएं इस विशिष्ट सापेक्षा को लेकर निर्धारित करने पर पहली सुलझा ली गयी। इस सापेक्षता के रहस्य को लेकर अनेक प्रकार के भैतिकी के विभिन्न गणितीय प्रमाणों को पुनः निर्धारित किया गया और उन्हें प्रयोगों द्वारा पुष्ट भी पाया गया।

तीर्थंकर महावीर की सापेक्षता कोरी काल्पनिक नहीं थी और उसने प्रकृति में भूमिका अदा करने वाली कर्म सम्बन्धी घटनाओं में गणितीय सापेक्षता का आधार भी देखा तथा कर्म के गणितीय रूप को लेकर ज्ञान दर्शन के नये जगत का उद्घाटन कर दिया। सूचना तंत्र का ध्वलादि ग्रंथों में विकसित रूप असाधारण प्रतीत होता है। किस प्रकार कर्म के विभिन्न हस्ताक्षरों में प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग और स्थिति के प्रमाण पारस्परिक सापेक्षता की मर्यादाओं के भीतर जीव की अनेक चालों को प्रकट करते हैं—यह गहन अध्ययन का विषय हो जाता है।

आइंस्टाइन ने भी विशिष्ट सापेक्षता के आगे कदम रखा और वह सामान्य सापेक्षता तक पहुँचने के लिये देश, काल के

सिवाय पुद्गलों की भी उपस्थिति अवधारित करने लगे। विशिष्ट सापेक्षता के लिए कोई फील्ड (निमित्त) न था, पर पुद्गलों की उपस्थिति होने से सर्व प्रथम उन्होंने गुरुत्वाकर्षण फील्ड (निमित्त) का विचार करने हेतु सूचना तंत्र में देश, काल के संयुक्त क्षेत्रीय स्वरूप में वक्रता की अवधारणा-प्रस्तुत कर जो परिणाम निकाले, वे अभूतपूर्व थे और जिन्हें वैज्ञानिकों ने तीन प्रयोगों द्वारा पुष्ट भी कर दिया और अभी तक भी वे पुष्ट सिद्ध किये जाते रहे हैं। ये प्रयोग क्रमशः ग्रह बुध के परिपथ से, पृथ्वी के पास से गुजरने वाली तारा प्रकाश किरण के मुड़जाने से, तथा इंद्रधनुषीय सप्तरंगी स्पेक्ट्रम में लाल हटाव से सम्बन्धित थे। इनका आधार कर्म (Action) की वह अवधारणा थी जो देशकाल की वक्रता से सम्बन्धित थी।

तीर्थकर महावीर की कर्म की गणितीय अवधारणा इसके बहुत आगे थी, क्योंकि वह जीव और पुद्गल, दोनों के पारस्परिक, अंतः क्रिया की सामान्यतम सापेक्षता को लेकर उद्घाटित हुई थी। जीव के स्वभाव की विकृतियां या विभाव के रूप जिन विकारों में से होकर गुजरते हैं, उनका गणितीय प्रामाणिक चित्रण इस कर्म सिद्धान्त में प्रस्तुत किया गया था। उनकी वाणी में अल्पतम समय, अल्पतम गति, तीव्रतम गति, पुद्गल परमाणु की अविभाज्यता आदि के मर्यादित आधार किये गये थे। एक समय में कम से कम कितने कर्म परमाणु और अधिक से अधिक कितने कर्म परमाणु प्रबद्धता को प्राप्त हो सकते हैं, और उनकी प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग स्थिति किस प्रकार के परिवर्तित रूपों को धारण करते चले जाते हैं। यह एक साधारण सा गणितीय कलन था। किन्तु इन वक्रताओं या विकारों में जो कमी होती दिखती थी उससे तत्संबन्धी आत्मा के गुणों में वृद्धि होती दिखाई दी उसका गणितीय कलन असाधारण था। उसके मात्र परिणाम लब्धिसार में अभिलेखबद्ध हैं।

1915 में आइन्स्टाइन ने जो सामान्य सापेक्षता को लेकर गुरुत्वाकर्षण फील्ड की अभूर्त पूर्व सूचनाएं प्राप्त की थीं, वह सापेक्षता गुरुत्वाकर्षण फील्ड (निमित्त) तथा विद्युतचुम्बकीय फील्ड (निमित्त) के संयुक्त रूप को लेकर नई सूचनाएं देने में विफल रही। न तो आइन्स्टाइन उसके सहारे कणों के विज्ञान को विकसित कर पाये न ही वे उस संयुक्त रूप में नाभिकीय निमित्तों को भी संयुक्त कर पाये, और इसप्रकार जिस सामान्य सापेक्षता के गणितीय रूप को लेकर उनका प्रकृति के सभी फील्ड्स (निमित्तों) का एक सूत्रीरूप बना लेने का स्वप्न था, वह टूट गया। उनके कर्म के गणितीय स्वरूप (Action) में वह सामान्य सापेक्षता न लाई जा सकी जो उनके स्वप्न को साकार

रूप दे देती।

यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है। क्या तीर्थकर महावीर को अल्पबहुत्व से मर्यादित असाधारण सापेक्षता आइंस्टाइन की साधारण सापेक्षता में योगदान दे सकती है, जो उनके समीकरणों में नये प्राण फूंक सके, और जहाँ वे निरर्थकता को प्राप्त हुए हैं, और उनमें सार्थकता प्रवेश कर सके? जो गणनाएं आइंस्टाइन ने साधारण सापेक्षता सिद्धान्त बनाने में की थीं उनका गणितीयस्वरूप कुछ शताब्दियों पूर्व इटली के रिस्सी और लेविसिबिटा उद्घाटित कर चुके थे। उसे टैंसर कलन कहा जाता रहा है। इटली के ही विटो वोलेटरा ने फंक्शन (फलन) के रूप को व्यापक रूप देकर जो भौतिकी के क्षेत्र में क्रांति फंक्सनल द्वारा उत्पन्न की, उसने कर्म के सत्त्व की अवधारणा प्रस्तुत की इसी में वह बीज छिपा था जो आइंस्टाइन की साधारण सापेक्षता को व्यापकतर बना सकता था। आज गणितीय भौतिकी में जितनी भी सत्त्व समग्रता को लेकर गणनाएं होती हैं, उन सभी का श्रेय वोलेटरा और फ्रेडहोम को जाता है।

तीर्थकर महावीर के अल्पबहुत्व सापेक्षता में क्वांटम सिद्धान्त अपने आप प्रकट हो जाता है जो आइंस्टाइन की साधारण सापेक्षता में उपलब्ध नहीं हो सकता है। अनेक प्रकार के कणों सम्बन्धी विज्ञान को क्वांटम सिद्धान्त और आइंस्टाइन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त पर आधारित किया गया था। इस सिद्धान्त ने जो कर्म का आश्रय किया उसमें गुरुत्वाकर्षण फील्ड का संयोजन न हो सका। शेष तीन फील्ड्स - विद्युतचुम्बकीय, नाभिकीय निर्बल और सबल, का ही संयोजन (Unification) हो सका, जिसके लिए विगत पंजाब के अब्दुस सलाम को उनके सहयोगियों के साथ नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

आइंस्टाइन ने अपने कर्म के गणितीय स्वरूप में नि अल्प व दुख सम्बन्धी सचर (Variational) सिद्धान्तों का सहारा किया था उनमें टेलियोलाजी का समावेश रहता है। तीर्थकर महावीर के कर्म सिद्धान्त में भी इसी टेलियोलाजी का समावेश हुआ है, जो विभिन्न प्रकार की पर्यायों को एक समयवर्ती होने से सम्बन्धित है। समय की अविभाज्यता का मूलाधार अनेक आश्चर्यजनक तथ्यों को प्रकाशित करता है जो विलक्षणता उसी रूप में प्रकट करते हैं, जैसे आइंस्टाइन की विशिष्ट सापेक्षता से प्राप्त परिणाम।

ऐसे तुलनात्मक अध्ययनों की आज आवश्यकता है जो सारभूत हों और साथ ही कल्याणप्रद।

दीक्षा ज्वेल्सर्स, जबलपुर (म.प्र.)

अध्यात्म और चिकित्सा विज्ञान

प्राचार्य निहालचन्द जैन

अध्यात्म, प्रार्थना, ध्यान और सामायिक का रोगी के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर पश्चिमी जगत विशेषकर इंग्लैंड में बहुत अनुसन्धान और विवेचनार्थे चल रही हैं। भारत जिस आध्यात्मिक आस्था से हजारों वर्षों से जुड़ा है, आज विश्व का ध्यान उन रहस्यों की ओर जाना शुरु हो गया है। ब्रिटेन में इस समय एक बात पर विशेष बहस चल रही है कि भारत में प्रचलित अध्यात्म, आस्था और प्रार्थना जैसे भाव-विज्ञान से रोगी के स्वस्थ होने कि रफ्तार बढ़ जाती है। इसी पर वहाँ सफल परीक्षण और प्रयोग हुए हैं।

डॉ. लोरी डोसे ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि उन्होंने प्रार्थना की एक अजीब चिकित्सा पद्धति का अनुभव किया। उन्होंने अपने प्रशिक्षण समय का जीवन्त वृत्तान्त लिखा, जब वे टेक्सास के पाईलैण्ड मेमोरियल अस्पताल में थे। उन्होंने एक कैंसर के मरीज को अन्तिम अवस्था में देखा और उसे सलाह दी कि वह उपचार से विराम ले ले, क्योंकि उपलब्ध चिकित्सा से उसे विशेष लाभ नहीं हो रहा है। उसके बिस्तर पर बैठा हुआ कोई न कोई मित्र उसके स्वास्थ्य लाभ की प्रार्थना किया करता था।

एक वर्ष के पश्चात् जबकि डॉ. लोरी वह अस्पताल छोड़ चुके थे, उन्हें एक पत्र मिला कि क्या आप अपने पुराने मरीज से मिलना चाहेंगे। 1980 में जब डॉ. लारी मुख्य कार्यकारी अधिकारी बने, यह निष्कर्ष दिया कि प्रार्थना से विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन घटित होते हैं। उन्होंने लिखा कि मुझे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि वह मरीज अब भी जिन्दा है। उसके एक्स-रे का निरीक्षण करने पर पाया कि उसके फेफड़े बिल्कुल ठीक हैं। सन 1980 में जब डॉ. लारी मुख्य कार्यकारी अधिकारी दिये गये निष्कर्षों से चिकित्सा विज्ञान में नई आध्यात्मिक दृष्टि मिली और यह सुनिश्चित हुआ कि शरीर में होने वाली 'व्याधि' का एक प्रमुख कारण हमारी मानसिक सोच है जो 'आधि' के नाम से जानी जाती है। गलत सोच, मनोविकारों या मनोरोगों का कारण बनती है। इस परिप्रेक्ष्य में 'प्रार्थना' मन की बीमारी का सही इलाज है। अक्सर यह देखा गया है कि व्यक्ति जब 50 की उम्र पार कर जाता है, उस पर मानसिक तनाव का प्रभाव जल्दी होने लगता है। चिड़चिड़ापन उसके तनाव की ही अभिव्यक्ति है। डायबिटीज बढ़ने,

भूख कम लगने, कमर दर्द, आँखों की ज्योति मन्द पड़ने और रक्तचाप प्रभावित होना आदि बीमारियाँ, मानसिक तनाव के कारण हैं।

पस्तुतः प्रार्थना में या स्तुतिगान करते समय हम उस लोकोत्तर व्यक्तित्व से जुड़ जाते हैं, जिसकी गुणस्तुति, हमारी प्रार्थना का आधार होता है। मूल संस्कृत पाठ से भक्तामर स्तोत्र का उच्चारण करते हुए, क्या हम वैसी ही ध्वनि-तरंगों का निष्पादन और निर्गमन नहीं करने लगते हैं, जो आचार्य मानतुंग ने सृजित की होगी। उस समय ध्वनि-तरंगों की फ्रेक्वेंसी में साम्यावस्था होने से हम आचार्य मानतुंग से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। केवल वाचनिक प्रार्थना रूपान्तरण नहीं कर पाती, भावों की तीव्रता या भाव सम्प्रेषण प्रार्थना का प्रमुख तत्त्व होना चाहिए। ऐसी प्रार्थना, बुरे या कषायजन्य विचारों के लिये परावर्तक (Reflector) का कार्य करता है। बुरे विचार हमारे ऊपर आक्रमण करें, इसके पहले ही वे प्रत्यावर्तित हो जाते हैं। अतः प्रार्थना भावनात्मक परिवर्तन के लिए एक प्रबल निमित्त है।

घटना 1999 की है। कैंसर विशेषज्ञ डॉ. राबर्ट ग्राइमर, वर्मिघम रायल आर्थोपेडिक अस्पताल के अधिकारी थे। उनकी नजर एक ऐसे मरीज पर पड़ी जो हड्डियों के कैंसर से जीवन-मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहा था। उसका ट्यूमर शल्य-क्रिया द्वारा अलग कर दिया गया था। लेकिन जब दूसरा ट्यूमर पैदा हो गया तो मरीज मेरी सेल्फ ने मौत को ही मित्र मान लिया। वह पेशे से साइकियाट्रिस्ट थी। उसने दवा की चिन्ता छोड़कर ईश्वर की प्रार्थना के लिए अपनी आस्था जोड़ ली। समय बीतता गया और कुछ अद्भुत परिणाम हासिल हुए। स्कैन रिपोर्ट में उसका ट्यूमर कुछ घटता हुआ नजर आया। डॉ. ग्राइमर ने मैरी से इसके बारे में जानना चाहा तो उसने बड़े आत्मविश्वास से भरकर कहा- 'हाँ डॉक्टर साहब! मेडिकल इलाज से परे भी कुछ और है, अच्छा होने में, मैं उसी को श्रेय देती हूँ।'

डॉ. ग्राइमर ने हंसते हुए कहा- "मैं खरीद लेना चाहता हूँ।" नहीं ! वह कोई क्रय-विक्रय की वस्तु नहीं है। ईश्वर के प्रति आस्था पैदा कर सकते हैं परन्तु इसे करोड़ों डॉलर में भी नहीं खरीदा जा सकता है। वस्तुतः यह वस्तु नहीं, विशुद्ध भाव है। ब्रिटेन के डॉक्टरों का ध्यान इसे दूसरी शक्ति की ओर जाने लगा जिसे अध्यात्म शक्ति (ध्यान

प्रार्थना) की अमोघ शक्ति कह सकते हैं। वे चिकित्सा विज्ञान को आध्यात्म विज्ञान के परस्पर सह सम्बन्धों (Corelation) पर प्रयोगों में जुट गये।

एडिनबरा यूनिवर्सिटी के मेडिकल स्कूल के डॉक्टर 'मरे' अपने साथ मरीज की एक्स-रे रिपोर्ट और पेनिसिलीन के साथ यह जानकारी भी रखते थे कि क्या मरीज कभी प्रार्थना भी करता है? प्रायः मरीज के मन में जो परेशानियां, उसकी बीमारी पर हावी हैं उन्हें बाहर निकालने के लिए डॉक्टर प्रयोग करें, तो इलाज का प्रभाव ज्यादा सक्रिय होने लगता है। प्रो. स्टीव राइट के अनुसार डॉक्टर को पहले अध्यात्म की जरूरत है, जिससे वह मरीज को प्रभावित कर सकता है। एडिनबरा विश्वविद्यालय के चिकित्सा-छात्रों के पाठ्यक्रम निर्धारकों से मांग की कि वे चिकित्सा-पाठ्यक्रम के साथ अध्यात्म की कक्षाएं लगाएँ जहाँ उन्हें 'विधिवत् ध्यान और प्रार्थना के वैज्ञानिक प्रशिक्षण से अवगत कराया जावे। उन्हें योग-विद्या के बारे में प्रशिक्षण भी दिया जावे। ध्यान और योग से शारीरिक स्थिरता के साथ मन को एकाग्र किया जा सकता है।

ध्यान एवं रोग निदान में इसकी महत्ता- ध्यान में किसी मन्त्र या मन्त्र - बीजाक्षर का निःशब्द चिन्तन है, जो आत्मशान्ति तथा संकल्प शक्ति को बढ़ाने में सबल निमित्त है। 'ध्यान-संवेगात्मक भावों एवं मानसिक विकारों' पर नियंत्रण कर व्यक्ति को सहिष्णु एवं तनाव रहित करता है। क्रोध जैसे आवेग को ध्यान से कम करके शान्त एवं स्वभाव में जीने में सहायता करता है।

हमारा चित्त/मन, सदैव विचारों की यात्रा करते हुए दौड़ा करता है। जीवन ऊर्जा का 80 प्रतिशत भाग यों ही व्यर्थ बाहर बहकर नष्ट हो जाता है। इसे संधारित करने की क्षमता हम नहीं जुटा पाते हैं। ध्यान एवं योग से इस जीवन ऊर्जा (चैतन्य धारा)को अपने भीतर रोक सकते हैं। जैसे उत्तल लेंस फैली हुई प्रकाश किरणों को एक बिन्दु पर फोकस कर ऊर्जा (ऊष्मीय) का निष्पादन करता है, ऐसे ही ध्यान से विचारों का प्रवाह/या विचारों का आक्रमण रुककर विचार-शून्य स्थिति की ओर ले जाता है। ध्यान से हमारे विचारों में विकारों का परिशोधन होता है।

ध्यान है - हमारी बाह्य कायिक/वाचनिक/ एवं सूक्ष्म मानसिक भाव वृत्तियों का संकुचन/जितना-जितना बाह्य प्रवृत्तियों में संकुचन या निरसन होगा, उतना ही आत्म-शुद्धि या आत्म शक्ति का विकास होता चला जायेगा। ध्यान-जैनदर्शन की आत्मा है। यह चारित्र-शुद्धि का अन्तिम पड़ाव

है। हम रोज-रोज मन्दिर क्यों जाते हैं? वस्तुतः प्रतिमा की ध्यानस्थ मुद्रा के दर्शन से हमें अपनी मौलिकता में लौटने का सन्देश प्राप्त होता है। यह ऐसा भाव रसायन है, जो जीवन की अस्त एवं वर्जनीय काषायिक प्रवृत्तियों को दूरकर जीवन रूपान्तरण में परम सहायक बनता है।

रोग के निदान में ध्यान और योग में अद्भुत क्षमता है। नार्थ कैरोलिना की ड्यूक यूनिवर्सिटी के डॉक्टरों ने पाया कि जो लोग मन्दिर, उपासना गृह, प्रार्थना या ध्यानस्थल पर नियमित जाकर ध्यान करते हैं, वे इन स्थानों पर न जाने वाले लोगों की अपेक्षा कम बीमार पड़ते हैं। अध्ययनों से एक बात और सिद्ध हुई है कि लोग सप्ताह में एक या अधिक बार धर्मस्थलों/तीर्थस्थानों पर जाकर धर्मसेवा करते हैं, वे अन्य की अपेक्षा सात वर्ष अधिक जीते हैं।

ब्रिटेन में 31 अध्ययनों से एक तथ्य उजागर हुआ कि जो प्रार्थना में विश्वास रखते हैं और प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं, वे ज्यादा प्रसन्न रहते हैं तथा मानसिक तनाव कम होने से वे शान्ति का अनुभव करते हैं। ब्रिटेन के डॉ. गिल व्हाइट का कथन है कि - "अध्यात्म के जरिये चिकित्सा करते समय में उस समय तक प्रतीक्षा करती हूँ, जब तक मेरे शरीर में एक करण्ट सा महसूस नहीं होने लगता। मेरे हाथ, मरीज के सिर व शरीर के ऊपर घूमते हैं और रोगी का मेरे मन व शरीर से ट्यूनिंग हो जाती है, जिससे हमारे व मरीज के बीच ऊर्जा का संचरण होने लगता है।"

रॉयल सोसाइटी ऑफ मेडिसीन के जनरल में प्रकाशित एक शोधालेख में डॉ. डिक्सन के अनुसार- 'पहिले वह स्वयं अध्यात्म के जरिये ऊर्जा संचित करता है, जो उसे ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से प्राप्त होती है, फिर उसे मरीज को प्रदान करता है। अध्यात्म के क्षेत्र में 'विश्वास' या श्रद्धा एक शक्तिशाली चीज है। यदि डॉक्टर मरीज को यह विश्वास दिला पाने में सफल है कि वह अपने आराध्य के प्रति पूर्ण विश्वास रखे, तो जल्दी स्वास्थ्य लाभ ले सकोगे, ऐसे डॉ. की दवा ज्यादा असरकर साबित होगी।

अमेरिका के 125 में से 50 मेडीकल कॉलेजों में इस समय अध्यात्म- विषय को पाठ्यक्रम के रूप में स्वीकार कर पढ़ाया जा रहा है। डॉ. ब्रानले एंडरसन का कहना है कि जब तक डॉ. स्वयं को अध्यात्म की ऊर्जा से चार्ज नहीं करेगा तब तक वह मरीज को इससे चार्ज नहीं कर सकता। पश्चिमी जगत में आज आध्यात्मिक इलाज को समग्र इलाज की संज्ञा दी गई है।

भारत को विरासत, जिसका अलिखित पेटेंट अभी

तक भारत के नाम ही है, भारत में क्यों उपेक्षित हो रही हैं ? आवश्यकता है, अध्यात्म को चिकित्सा विज्ञान से जोड़कर, मानवीय सेवा को धर्म से सम्बद्ध कर आध्यात्मिक प्रयोग करने की। मेरा एक निजी संस्मरण इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है जिसके द्वारा इस लेख का उपसंहार करना चाहूँगा। जो अध्यात्म और चिकित्सा की जुगलबंदी को पुष्ट करता है। घटना 20 फरवरी 2002 की है। मरी बेटी नन्दिनी का जयपुर में एंजेजमेंट हुआ। वर-पक्ष से सुझाव आया कि मार्च 02 में ही शादी सम्पन्न कर ली जावे क्योंकि लड़के की माँ स्तन कैंसर से सीरियस है। शायद अप्रैल 04 तक खुशी के ये क्षण ने देख पाएँ। मैंने शादी के पूर्व होने वाली समधिनि

श्रीमती सुमन जैन को एक लम्बा विश्वासभरा पत्र लिखा और अमुक मन्त्र लिखकर जाप्य करने की सलाह दी। प्रार्थना में संस्कृत स्तोत्र (भक्तामर) पढ़ने को कहा। 25 अप्रैल 2002 महावीर जयन्ती के दिन शादी सम्पन्न हुई और आज 2 वर्ष से अधिक समय बाद भी समधिनि (मेरी बेटी की सास) अपने अवशेष आयु निषेकों के साथ ज्यादा स्वस्थ होकर जी रही हैं। अध्यात्म की शक्ति, जीवन में शान्ति का वर्षण करती है। जो अमोल विरासत है। जरूरत है- एक दृढ़ विश्वास/आस्था/श्रद्धा और संकल्प की।

बीना (म.प्र.)

जीवदयाप्रेमी जीवनसृष्टि का नाश करनेवाले व्यापार नहीं करें

एक जीव दयाप्रेमी व्यक्ति हमारे पास आकर कहने लगा कि वह हर रोज कबूतर को दाने डालते हैं, गाय को चारा खिलाते हैं तथा मछलियों को आटा भी खिलाते हैं। हमने उनके धंधे के बारे में पूछा तो कहते हैं कि मेरी हिन्दुस्तान लीवर कंपनी एवं साबुन की एजेन्सी है। हमें तुरंत विचार आया कि साबुन बनाने के लिए जानवरों का कत्ल कर उसके शरीर से निकलने वाले चर्बी का उपयोग किया जाता है। करोड़ों रुपये के साबुन का व्यापार करने वाला व्यक्ति खुद जीवदयाप्रेमी होने का दावा किस तरह करता है? अहिंसाप्रेमी बनने वालों को हिंसा से चलने वाले धंधों को अपनाने के लिए तत्पर नहीं रहना चाहिए। मुंबई के उपनगर में गायनेकोलोजिस्ट नामक महिला धर्मात्मा जैसी है, वह मंदिर जाती है, साधुओं का सत्संग करती है व्रत करती है साथ-साथ वह डॉक्टर महिला अपने मेटर्निटी में गर्भपात कराने का काम भी करती है। 1970 सं. पहले वह गैर कानूनी रूप से गर्भपात कराती थी अब नियम बनने के बाद कायदे से गर्भपात कराती है, ऐसी व्यक्ति को धर्मात्मा कैसे कह सकते हैं? पुराने जमाने में मछली, कसाई आदि धंधे हिंसक माने जाते थे और समाज में प्रतिष्ठा हासिल करने के लिए हिंसक धंधे भी लोग करने लगे हैं। शेरार ब्रोक़र एक प्रतिष्ठित धंधा कहा जाता है लेकिन उसमें शामिल कंपनियों की सूची को देखने पर पता चलता है कि उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं, दवाइयां, फ़ूड प्रोसेसिंग, केमिकल्स इत्यादि में भी कत्लखाने से निकलने वाले अवयव का उपयोग किया जाता है। दवा बनाने के लिए जानवरों पर परिक्षण किया जाता है जिससे केमिस्ट की दुकान और कसाई की दुकान में कोई फ़र्क नहीं रहा। कसाई अपनी दुकान में मांसाहार पदार्थ स्वरूपों में बेचता है जबकि केमिस्ट उसे पैकिंग कर उसे आकर्षक रूप में बेचते हैं। केमिकल्स इण्डस्ट्रीज द्वारा तैयार की गई दवा से करोड़ों जीवों की हत्या होती है। केमिकल्स का गंदा पानी नदियों के पानी को दूषित करता है जिससे जलचर जीवों की मृत्यु हो जाती है, जिस क्षेत्र में सीमेन्ट के कारखाने बनाये जाते हैं वहां लाखों पेड़ों का संहार किया जाता है। प्लास्टिक की थैलियां पर्यावरण के लिए सबसे बड़ी समस्या बन गई हैं, रास्ते पर घूमने वाली हजारों गायें, प्लास्टिक की थैलियां खाकर मर जाती है। अतः जीव दयाप्रेमियों को अहिंसक व्यापार अपनाना चाहिए। प्रकृति का दोहन एवं पशुओं पर अत्याचार को रोकना उनकी पहली प्राथमिकता है।

'जिनेन्दु' साप्ताहिक से साभार

ज्ञान एवं चारित्र्युक्त शिक्षा की आवश्यकता

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन

चारित्र्य का भवन संस्कार के बीज से निर्मित होता है। जीवन भर की साधना भी इसके लिए कम होती है अतः जरूरी है कि जो साधु हैं वे अपनी साधना से विचलित न हों और जो श्रावक हैं वे साधु को सांसारिकता के आकर्षण से बचायें। प्रलोभन में न लुभायें। यदि साधु श्रावकों की सांसारिक स्वार्थपूर्ति के साधन बनेंगे तो उनका पतन निश्चित है। पतनशील (पतित) साधु के लिए दोषी मात्र साधु ही नहीं होंगे अपितु वे श्रावक भी होंगे जो साधु के पतन में सहायक बनते हैं। श्रावक साधु को साधु ही बने रहने दें। यदि साधु तपस्वी होगा तो उसे बिना कहे बिनायाचना के सब प्राप्त हो जायेगा। सब का मतलब संसार नहीं बल्कि वह जिससे संसार छूटता है और तप में वृद्धि होती है। विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि प्राप्त थी किन्तु इसका उन्हें आभास तक नहीं था। अहंकार या दुरुपप्रयोग तो बहुत दूर की बात है। वे मुनि धन्य थे जिनके शरीर की स्पर्श-गन्ध से विष तक दूर हो जाते थे। निष्पृहि साधु अपने तप-त्याग से जितनी प्रभावना कर सकता है उतनी किसी अन्यप्रकार से नहीं। दिगम्बर मुनि गुरु का लक्षण बताते 'छत्रचूडामणि' में श्री वादीभसिंह सूरी कहते हैं कि-

रत्नत्रय विशुद्धः सन्, पायस्नेही परार्थकृत।

परिपालित धर्मो हि, भवाब्धेस्तारको गुरुः ॥ 2/30

अर्थात् जो रत्नत्रय से पवित्र है, पात्रों के प्रति प्रेम करने वाला है, परोपकारी है, धर्म का परिपालन करने वाला है, संसार-समुद्र को पार करने वाला है, वही गुरु है।

साधु तो सन्तोषी होते हैं। कहा भी है- "सन्तोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः" अर्थात् सुख का मूल आधार सन्तोष है, इसके विपरीत तृष्णा, लालसा दुःखों का मूल है। जबकि "सन्तोषादनुत्तमः सुख लाभः" (योग 2/42) अर्थात् सन्तोष से जो सुख होता है वह सबसे उत्तम सुख है। साधु को जिस तप से सुख और सन्तोष मिलता है उस पर प्रश्न चिन्ह लगना ही साधु गरिमा को कम करना है, जो किसी भी साधु को इष्ट नहीं होना चाहिए। 'महाभारत' में यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा- "तपः किं लक्षणम्" तो युधिष्ठिर ने उत्तर दिया- 'तपः स्वधर्म वर्तित्वम्' अर्थात् अपने कर्तव्य के पालन में जो भी विघ्न बाधाएं आएँ उन्हें सहते हुए निरन्तर अपने स्वधर्म का पालन करना ही तप है। इसी से मोक्षरूप सुख की प्राप्ति होगी।

जब लक्ष्य साधुत्व हो तो समाज के कर्णधारों को चाहिए कि वे ऐसी शिक्षण व्यवस्था को अपनायें जिसमें सदगृहस्थ भी बनें और सच्चे साधु भी। यदि हम अधुनातन आवश्यकताओं को थोड़ी देर के लिए भूल जायें तो पायेंगे कि मनुष्य की प्रायः तीन मूलभूत आवश्यकतायें मानी जाती हैं- 1. रोटी 2. कपड़ा 3. मकान। ये सांसारिक आवश्यकतायें हैं जिनकी पूर्ति मनुष्य पुरुषार्थ के माध्यम से करता है। ये चार पुरुषार्थ हैं- 1. धर्म 2. अर्थ 3. काम 4. मोक्ष। धर्म से प्रारम्भ होकर मोक्ष प्राप्ति तक की यह यात्रा जो जीवन भर चलती है, यही पुरुषार्थ की पूर्णता है। मूलभूत आवश्यकताओं- रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्णता के लिए अर्थ की आवश्यकता प्रायः समझी व कही जाती है, किन्तु अर्थ के लिए भी ज्ञान की अपरिहार्य आवश्यकता होती है। अर्थ से प्राप्त रोटी से शरीर में उत्पन्न भूख की पूर्ति व कपड़ा और मकान से शरीर की रक्षा होती है। इस प्रकार शरीर की रक्षा को महत्व मिला था, दिया जाता है। कारण स्पष्ट है कि-

“शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।”

अर्थात् शरीर निश्चय से प्रथम धर्म का साधन है। साध्य की प्राप्ति के लिए साधन की रक्षा अनिवार्य भी है और अपरिहार्य भी। लेकिन यह भी ध्यान रहे कि "न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः" अर्थात् धन के साथ-साथ आत्मा की भी रक्षा चाहते हों उन्हें अपना जीवन धर्ममय चारित्र्यमय बनाना ही चाहिए। अपने जीवन को धर्ममय बनाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता सभी आवश्यकताओं में सर्वोपरि है। ज्ञान की महत्ता प्रतिपादित करते हुए पंडित प्रवर दौलतराम जी "छहढाला" में कहते हैं कि-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।

इह परमामृत जन्म-जरा-मृत्यु रोग निवारन ॥ 4/3 ॥

अर्थात् ज्ञान के समान इस संसार में सुख का दूसरा कारण नहीं है। वह इस जन्म में अमृत और जन्म, जरा (बुढ़ापा), मृत्यु और रोगों का निवारण करने वाला है। नीतिकार कहते हैं कि-

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

(भर्तृहरि : नीतिशतक 12)

अर्थात् जिन मनुष्यों में न तो विद्या ही है, न तप, न दान, न ज्ञान, न शील, न गुण और न धर्म ही है। वे इस भूलोक में पृथ्वी के भारस्वरूप मनुष्य के रूप में पशु ही चर रहे हैं।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेश गमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्या विहीनः पशुः ॥

(भर्तृहरि : नीतिशतक 19)

अर्थात् विद्या ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ रूप है। छिपा हुआ सुरक्षित धन है। विद्या भोग-विलास देने वाली है तथा यश एवं सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। परदेश में विद्या ही बन्धुजन है, विद्या सबसे उत्कृष्ट देवता है। राजाओं के मध्य में विद्या ही पूजी जाती है, धन नहीं इसलिए विद्या से हीन मनुष्य पशु है।

इस प्रकार अनन्त गुणों वाली विद्या है। यह विद्या किस प्रयोजन से ग्रहण की जाय, यह विचारणीय है। कविवर बुधजन जी का मानना है कि-

तजिवै गहिवै कौ बनै विद्या पढ़ते ज्ञान।

(बुधजन सतसई 433)

अर्थात् विद्या पढ़ने से जो विवेक या ज्ञान प्राप्त होता है उससे अहित का त्याग और हित का ग्रहण होता है। विद्या वही श्रेष्ठ है जो मुक्ति के लिए हो "सा विद्या या विमुक्तये।" 20 वीं शताब्दी में ज्ञानरथ के प्रवर्तक परम पूज्य गुरुवर प्रातः स्मरणीय क्षु. श्री 105 गणेशप्रसाद जी वर्णी का मानना था कि "शिक्षा का उद्देश्य शान्ति है। उसका कारण आध्यात्मिक शिक्षा है। आध्यात्मिक शिक्षा से ही मनुष्य ऐहिक एवं पारलौकिक शान्ति का भाजन हो सकता है।" उनके ही अनुसार "आत्महित का कारण ज्ञान है। हम लोग केवल ऊपरी बातें देखते हैं जिससे आभ्यान्तर का पता ही नहीं चलता। आभ्यान्तर के ज्ञान बिना अज्ञान दूर नहीं हो सकता। यदि कल्याण चाहो तो ज्ञान को उतना ही आवश्यक समझो जितना कि भोजन को समझते हो।"

शिक्षा के लिए अनिवार्य कारक हैं-

पुस्तक गुरु धिरता लगन मिले सुधाय सहाय।

तब विद्या पढ़िवौ बनै, मानुष गति परजाय ॥

(बुधजन सतसई 428)

अर्थात् मनुष्य पर्याय में पुस्तक, गुरु, स्थिरता, लगन, योग्य निमित्त की उपयोगिता, स्थान आदि का सहारा मिलने पर विद्या का अध्ययन हो सकता है। प्राचीन काल में तीन कुलों को मान्यता प्राप्त थी -

1. पितृ कुल 2. मातृ कुल 3. गुरु कुल

जिस प्रकार व्यक्ति पितृ और मातृकुल के सम्मान के लिए सचेष्ट रहता था उसीप्रकार गुरुकुल की प्रतिष्ठा को बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील तथा सचेष्ट रहता था इसलिए भगवान जहाँ देवता थे वहीं देवतुल्य चार और मानकर उन्हें प्रतिष्ठा दी जाती थी कहा जाता था कि-

1. मातृदेवो भव
2. पितृदेवो भव
3. आचार्यदेवो भव
4. अतिथिदेवो भव।

शिक्षा सदाचार मूलक होनी चाहिए इसकी चार कसौटियाँ पू. क्षु. श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी ने मानी हैं- 1. धार्मिकता 2. नीतिमत्ता 3. बुद्धिमत्ता 4. आत्म दृढ़ता। अतः व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु ऐसी शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति आवश्यक है जो उक्त उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो। इसके लिए हमारे सम्पन्न समाज को चाहिए कि वह ऐसे नवीन गुरुकुल स्थापित करें, जो पूर्णकालिक शिक्षण पद्धति वाले हों, आवासीय हों, जहाँ शिष्य और गुरु एक साथ रहें। गुरु का शिष्य पर पूर्णकालिक नियंत्रण हो, गुरु की ही आज्ञा सर्वोपरि हो। हमें लौकिक, व्यावसायिक एवं मूल्यपरक शिक्षा की व्यवस्था करना चाहिए ताकि विद्यार्थी विद्यार्जन के बाद न आज के ज्ञान-विज्ञान से शून्य हों और न ज्ञान एवं चारित्र के धन से। क्या समाज इस चुनौती को स्वीकार कर एक नयी शिक्षा क्रान्ति का श्रीगणेश करेगा?

एल- 65, न्यू इन्दिरानगर,
बुरहानपुर (म.प्र.)

आचार्य विद्यासागर जी के सुभाषित

- समता के साँचे में ढला हुआ ज्ञान ही विपत्ति के समय काम आता है।
- समता का विलोम है तामस। समता जीवन का वरदान है और तामस अभिशाप।
- समताधारी यश में फूलता नहीं और अपयश में सूखता नहीं।
- समता भाव ध्यान नहीं है वह तो राग द्वेष से रहित एक परम पुरुषार्थ है।

'सागर बूढ़ समाय'

13. कलश : कलश मंगल एवं पूर्णता के प्रतीक होते हैं। मानव जब परमात्मा की सत् साधना करता है तो पूर्ण या परमात्मा हो जाता है। यश-परिवर्द्धन के लिये कलश का प्रयोग जैनपूजा में किया गया है।

14. ध्वजा : मन्दिरजी में हो रही भक्ति, पूजन, मंत्र आदि की शब्द-वर्गणा को मन्दिर के ऊपर की ओर खींचकर ध्वजा के माध्यम से वह पुद्गल शब्द-वर्गणा सर्वत्र हवाओं को स्पर्शित होकर व्याप्त होती है और जहाँ-जहाँ वह हवा जाती है वहाँ-वहाँ का वातावरण शुद्ध, शान्त, सात्विक, धार्मिक होता जाता है। ध्वजा का नाम पताका भी है, इससे मंदिर का पता भी प्राप्त होता है।

15. मानस्तम्भ : मानस्तम्भ अर्थात् जिसको देखकर मान स्तम्भित हो जाता है, वह मानस्तम्भ कहलाता है। मन्दिर जी में प्रवेश समर्पण, श्रद्धा, आस्था के भावों को लेकर करना चाहिये। अपने अहंकार, मान-कषाय आदि को मन्दिर के बाहर छोड़कर मन्दिर में प्रवेश करें। जिनेन्द्रमहिमा दर्शाने का भी एक माध्यम मानस्तम्भ होता है और जिन लोगों का मन्दिर में प्रवेश वर्जित है, वे मानस्तम्भ को देखकर परमात्मा के दर्शन का लाभ लेते हैं।

16. शिखर : जिस प्रकार समवसरण में भगवान् के ऊपर अशोक वृक्ष होता है, उसी प्रकार मन्दिर में अशोक वृक्ष के प्रतीक के रूप में शिखर बनाया जाता है एवं जो लोग परिस्थितियोंवश मन्दिर नहीं जा पाते, वे दूर से ही शिखर की वन्दना करके पुण्यार्जन कर लेते हैं और यदि ऊपर से देव आदि के विमान निकलते हैं, तो ऊँचे-ऊँचे शिखर देखकर वे भी जिनालय के दर्शन का लाभ उठा पाते हैं। जैसे अशोक वृक्ष के नीचे जाने पर सारे शोक नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार मन्दिर के शिखर के नीचे जाकर परमात्मा की उपासना करने से भी सारे शोक नष्ट हो जाते हैं। मन्दिर के शिखर प्रकृति से विशुद्ध परमाणुओं को संग्रहित कर मन्दिर में नीचे पहुँचाते हैं, जिससे मन्दिर का वातावरण शुद्ध बना रहता है।

17. त्रय छत्र : त्रय छत्र भगवान् के तीन लोक (अधोलोक, मध्यलोक और देवलोक अर्थात् ऊर्ध्वलोक) के नाथ स्वामी होने का द्योतक हैं। तीन लोक पर जिनेन्द्र प्रभु का एकछत्र राज्य हो गया है एवं तीन छत्र देखकर आत्मशक्ति को जागृत करने की प्रेरणा मिलती है कि हम भी यदि

जिनेन्द्र के बताये मार्ग पर चलेंगे तो उनके ही समान त्रिलोकीनाथ बन जायेंगे। इसी उद्देश्य को लेकर भगवान् के ऊपर तीन छत्र लगाते हैं। ध्यान रहे, नीचे सबसे बड़ा छत्र, उसके ऊपर थोड़ा छोटा और सबसे ऊपर सबसे छोटा छत्र लगाना चाहिये। ये लोक के अनुसार हैं।

18. चौसठ चंवर : भगवान् पर दुरते हुये चौसठ चंवर चौसठ ऋद्धियों के प्रतीक हैं। अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् चौसठ ऋद्धियों के नाथ बन गये हैं। सारी ऋद्धियाँ उनके चरणों की दासी बनकर उनकी सेवा में खड़ी हैं। चंवर को देखने से प्रेरणा मिलती है कि हमें सांसारिक भौतिक सम्पदा के पीछे नहीं भागना चाहिये, क्योंकि उनके पीछे भागने से अर्थात् ऋद्धि के पीछे भागने से आत्म-तत्व की, शाश्वत् सुख की उपलब्धि नहीं होती, वरन् आत्मिक-साधना करने से सारी ऋद्धियाँ, भौतिक सम्पदाएँ स्वतः हमारे चरणों में आ जाएँगी। इसी बात के प्रतीक के लिये चौसठ चंवर होते हैं। यह भगवान् का प्रतिहार्य भी है। समवसरण में आठ-आठ यक्ष आठों दिशाओं में चंवर दुराते हैं।

19. भामण्डल : समवसरण में भगवान् के पीछे भामण्डल होता है, जिसमें भव्य जीवों को अपने सात भवों का (तीन अतीत के, तीन भविष्य के और एक वर्तमान का) अवलोकन होता है, जो सम्यक्त्व में कारण बनता है। मन्दिरजी में प्रतिमा के पीछे भामण्डल लगाते हैं। उसके बीचों-बीच एक काँच का शीशा लगाते हैं। उस पर दर्शन करने वालों का प्रतिबिम्ब बनता है। अतः दर्शनार्थी एक दृष्टि शीशे पर बने प्रतिबिम्ब पर डालता है एवं एक दृष्टि भगवान् पर डालता है, तो प्रेरणा मिलती है कि मेरा जीवन कितना निकृष्ट है और परमात्मा का जीवन कितना महान् है। जब दोनों जीवन की तुलना करते हैं, तो महान् जीवन के प्रति श्रद्धा बनती है, जो सम्यक्दर्शन की उत्पत्ति में कारण है। इसी उद्देश्य से भगवान् के पीछे भामण्डल लगाते हैं।

20. गंधकुटी : गंधकुटी वह स्थान है जहाँ पर भगवान् का सिंहासन होता है। जिस पर भगवान् चार अंगुल अधर में विराजमान होकर उपदेश करते हैं। जिनेन्द्र भगवान् का पद जगत में सर्वोत्कृष्ट पद है और उच्च पद में स्थित आत्मा को विनयपूर्वक सम्मानार्थ उच्च स्थान पर विराजमान करते हैं।

21. - प्रदक्षिणा (परिक्रमा)

परिक्रमा का अर्थ : परि+क्रम+धञ् से परिक्रमा शब्द बनता है। परिक्रमा का अर्थ हुआ सिलसिला, क्रम, उत्तरोत्तर, घुसना, इधर-उधर भ्रमण करना। परिक्रमा पंचपरमेष्ठी के दायीं से बायीं ओर लगाना चाहिये।

धवलाकार वीरसेन स्वामी ने कहा है कि वन्दना करते समय गुरु, जिन और जिनगृह की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना चाहिये।

**वन्दनकाले गुरु जिण जिणहराणं पदक्खिणं
काऊण णमंसणं पदाहिणं णाम।**

धवला पु. 13/14,/28 /89

आचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपण्णति में प्रदक्षिणा का वर्णन देवों के वर्णन में किया है- देवियों सहित वे देव उत्तम मंगल-वादित्रों के शब्द से मुखरित जिनेन्द्रपुर को देखकर नम्र हो प्रदक्षिण करते हैं।

दट्टवण जिण्णिदिपुरं, वर-मंगल-तूर-सद्द-हलबोलं।

देवा देवी-सहिदा, कुव्वंति पदाहिणं पणदा ॥

8/604 पृ. 591

परिक्रमा लगाने का धार्मिक कारण :

1. ढाई द्वीपों में विद्यमान अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधु की प्रतीक अथवा तीन द्वीपों में स्थित चैत्यालयों की वन्दनास्वरूप अथवा तीनों द्वीपों से होनेवाले सिद्धों की सिद्धभूमियों की वन्दना-स्वरूप परिक्रमा तीन लगाते हैं, क्योंकि तीनों द्वीपों में हमारा पहुँचपाना सम्भव नहीं।

2. त्रिवर्ण (क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र इन तीन वर्णों) के निमित्त से होनेवाले अहंकार के नाश की सूचनारूप भी तीन ही परिक्रमा दी जाती हैं।

3. धर्म, अर्थ काम पुरुषार्थ गौण करके अब मेरे कदम मोक्ष पुरुषार्थ की ओर बढ़ें, यह याद दिलाने के लिये भी तीन ही परिक्रमा दी जाती हैं।

4. रत्नत्रय की प्राप्ति हो- ऐसी भावनासूचक तीन परिक्रमा दी जाती हैं।

5. मन की शुद्धता, वचन की शुद्धता के लिये अर्थात् हे जिनेन्द्र! मैं अपने मन को विकारों से रहित कर, वचनों को सात्विक कर और शरीर को स्नानादि से शुद्ध करके आपको नमस्कार कर रहा हूँ। अर्थात् त्रियोगों से तीन बार

प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करता हूँ। जन्म-जरा-मरण से दूर होने के लिये तीन परिक्रमा दी जाती हैं।

परिक्रमा लगाने का वैज्ञानिक कारण : प्रत्येक प्राचीन अचेतन वस्तु में एवं चेतन मनुष्य में अपना प्रभामण्डल होता है, उस प्रभामण्डल के सम्पर्क में आने से विचार-परिवर्तन होते हैं। किसी भी वस्तु के चारों तरफ घूमने से अथवा सिर को घुमाने से मस्तिष्क की रक्त प्रणालिका प्रभावित होती है तथा उससे पिनीयल और व्यूटर ग्रन्थियों पर भी रक्ताभिसरण होने से मन में एकाग्रता वृद्धिगत होती है।

परिक्रमा दायीं ओर से ही क्यों लगाते हैं ? मंदिर के पवित्र वातावरण में स्थित इलेक्ट्रान, न्यूट्रान आदि की गति भी दक्षिणावर्त होती है। संसार के पवित्र माने जाने वाले कार्यों में भी दाहिने हाथ का उपयोग किया जाता है। सारे लौकिक कार्यों में भी दाहिने हाथ का प्रयोग किया जाता है, जैसे- शादी के समय फेरे लगाने में, रुपयों के लेन-देन में, ज्योतिषी या वैद्य को हाथ दिखाते समय, सलामी लेते समय, भोजन करते समय, लेखन कार्य में, पूजन, हवन आदि में। मुसलमान सारे कार्य उलटे हाथ से करते हैं। पर सलाम सीधे हाथ से करते हैं।

22. मण्डल रचना : पूज्य परमदेवों के प्रकार, परमेष्ठी देवों के भेद, प्रमुख गुण और उनके प्रकारों को एवं व्रत, तीर्थक्षेत्र इनको सामान्य दृष्टि से जानने के लिये जो रेखाकार चित्र बनाया जाता है उसे मण्डल (मॉडना) कहते हैं। इसको यथायोग्य फलक (पाटा) पर बनाकर प्रतिमा के या यन्त्र के सामने स्थापित किया जाता है। यन्त्रसहित रेखाचित्र को यन्त्र कहते हैं।

इसका उपयोग विशेष पूजा, विधान, व्रतोद्यापन, तीर्थक्षेत्र पूजा और प्रतिष्ठा कार्यों में नियमतः किया जाता है। इसी प्रकार ग्रहशान्ति, नवीन गृहोद्घाटन, शान्तिकर्म आदि विशेष अवसरों पर ही मण्डल अथवा यन्त्र का उपयोग करना अनिवार्य है। धार्मिक पूजा, अनुष्ठान आदि अवसरों पर जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत यह मण्डलप्रणाली वैज्ञानिक एवं युक्तिपूर्ण है।

23. तिलककरण : पूजा अनुष्ठानमें तिलक-करण का महत्वपूर्ण स्थान है। तिलक जिनशासन के प्रति निष्ठा और परमात्मा की आज्ञा का प्रतीक है। प्रतीक के लुप्त होने पर निष्ठा भी लुप्त हुई और निष्ठाविहीन जीवन की आराधना कायरता का सूचक है।

तिलक का अतीत : पुराने जमाने में तिलक लगानेवाले श्रावकों की गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा थी। न्यायालय में भी तिलकधारी जैन जाता था तो उसके वचन पर कभी अविश्वास नहीं किया जाता था। तिलक करनेवाले व्यक्ति गौरवपूर्वक जीवनयापन करते थे। शिर पर मुकुट धारण करने की अपेक्षा तिलक धारण करने का गौरव अनोखा है।

तिलक का आकार : तिलक का आकार मंदिर के शिखर जैसा है। शिखर नीचे से विस्तृत चौड़ा होता है और ऊपर जाने पर सिकुड़ा हुआ-सा, तिलक भी ऐसे आकार का होने चाहिये जो यह सूचित करे।

तिलक के स्थान : उमास्वामीजी ने श्रावकाचार में तिलक के नौ स्थान बतलाये हैं- मस्तिष्क, दायाँ कान, बायाँ कान, दायाँ बाजूबंद, बायाँ बाजूबंद, गला, दायाँ हाथ की कलाई, पीठ, नाभि। तिलक लगाने से शरीर शुद्ध हो जाता है। यह इन्द्र के आभूषण का प्रतीक भी है। इसके बिना इन्द्र की पूजा निरर्थक होती है।

तिलक के अवसर : तिलक हमेशा पूजा प्रारम्भ करने से पहले किया जाता है, क्योंकि पूजा की प्रवृत्ति से पूर्व उस व्यक्ति की निष्ठा का स्वीकार होता है।

तिलक लगाने से शक्तियों का संचार होता है। ऐसी शक्तियों को जागृत करने के लिये सहस्रार चक्र को गतिमान करने की आवश्यकता है। सहस्रार चक्र को गतिमान करने के लिये आज्ञाचक्र को जागृत करने की आवश्यकता है और ऐसी जागृति करने के लिये हमारी शक्तियों के प्रवाह को उस स्थान की ओर प्रवाहित करने की आवश्यकता है और वैसी शक्ति तिलक लगाये बिना हम उस ओर प्रवाहित नहीं कर सकते।

सन्दर्भ :

1. लघु विद्यानुवाद पृ. 37
2. भारत में संस्कृति एवं धर्म- डॉ. एम.एल. शर्मा- रामा पब्लिशिंग हाऊस, बड़ौत, मेरठ पृ. 106, सन् 1969
3. जैन हिन्दी पूजा काव्य : डॉ. आदित्य प्रचण्डिया दिति, पृ 376
4. संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आपटे- रचना प्रकाशन, जयपुर
5. मन्दिर-मुनि अमितसागरजी महाराज, पृ-29-30, प्रकाशक चन्द्रा कापी हाउस आगरा, संस्करण 1998
6. उमास्वामी श्रावकाचार अन्तर्गत श्रावकाचार संग्रह भाग-3, सं. हीरालाल शास्त्री, पृ-162, श्लोक 120-122

जैन अनुशीलन केन्द्र
राज. विश्वविद्यालय, जयपुर

“आओ मनायें आज जयंती

कुण्डलपुर के वीर की ।
वर्तमान में प्रासंगिक हैं,
शिक्षाएँ महावीर की।

‘जियो और जीने दो’ सबको,
शुभ संदेश सुनाया था।
कर्ता ही सुख-दुःख का भोगी,
हम सबको समझाया था।
अनेकांत के दर्शन को खुद,
सच्चे मन से जाना था।
नैतिक बल के चमत्कार को,
निज मन से पहचाना था

बाधा का हल स्वयं निकाला,
नाशित नए शरीर की।(1)

हाथों में हथकड़ी पाँव में,
बेड़ी दण्ड कड़ा था।
आसमान से चन्दनबाला,
का संकल्प बड़ा था।
कर्मशत्रु से लड़ते-लड़ते
तीर नदी के आए थे।
मिला तेज से तेज देख,
सुर किन्नर नर हर्षाए थे।

माटी गंध विखेर रही है,
ऋजुकूला के तीर की। (2)

हिंसा झूठ कपट को तजकर,
चोरी परिग्रह को छोड़ें।
सत्य अहिंसा व्रत अपनाकर,
व्यसनों से हम मुँह मोड़ें।
आदर्शों को धारण करके,
चलें मोक्ष की राह में,
फिर से आई वीर जयंती,
संकल्पों की चाह में।
हम सब आचरणों में ढालें,
शिक्षायें अतिवीर की।

आओ मनायें आज जयंती,
कुण्डलपुर के वीर की। (3)

मनोज जैन ‘मधुर’
C5/13, इन्दिरा कालोनी,
बाग उमराव दुल्हा, भोपाल-10

भगवान महावीर के सिद्धांत

प्रस्तुति : श्रीमती सुशीला पाटनी

अहिंसा

प्राणियों को नहीं मारना, उन्हें नहीं सताना । जैसे हम सुख चाहते हैं, कष्ट हमें प्रीतिकर नहीं लगता, हम मरना नहीं चाहते, वैसे ही सभी प्राणी सुख चाहते हैं, कष्ट से बचते हैं और जीना चाहते हैं। हम उन्हें मारने/सताने का भाव मन में न लायें, वैसे वचन न कहें और वैसा व्यवहार/कार्य भी न करें। मनसा, वाचा, कर्मणा प्रतिपालन करने का भगवान महावीर का यही अहिंसा का सिद्धांत है। अहिंसा, अभय और अमन चैन का वातावरण बनाती है । इस सिद्धांत का सार-सन्देश यही है कि 'प्राणी-प्राणी के प्राणों से हमारी संवेदना जुड़े और जीवन उन सबके प्रति सहायी/सहयोगी बनें।' स्वाद, सौन्दर्य और सम्पदा की सम्पूर्ति में इन्सान जाने/अनजाने निरन्तर हिंसा से जुड़ता जा रहा है। आज जब हम वर्तमान परिवेश या परिस्थिति पर विचार करते हैं तो लगता है कि जीवन में निरन्तर अहिंसा का अवमूल्यन होता जा रहा है।

मेरी अवधारणा तो यही है कि अहिंसा का व्रत जितना प्रासंगिक भगवान महावीर के समय में था उतना ही, और उससे कहीं अधिक प्रासंगिक आज भी है। इसलिए व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की शान्ति/समुद्धि के लिए भगवान् महावीर द्वारा दिया गया "जियो और जीने दो" का नारा अत्यन्त महत्वपूर्ण और मूल्यवान है।

अनेकान्त

भगवान महावीर का दूसरा सिद्धांत अनेकान्त का है। अनेकान्त का अर्थ है - सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, अनाग्रह की स्थिति। इसे ऐसा समझ सकते हैं कि वस्तु और व्यक्ति विविध-धर्मी हैं। जिसका सोच, चिंतन, व्यवहार और स्थान-स्थिति अन्यान्य दृष्टियों से भिन्न-भिन्न है। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में साफ-साफ बात यह है कि एकान्त ही भाषा 'ही' की भाषा है, रावण का व्यवहार है, जबकि अनेकान्त की भाषा 'भी' की भाषा है, राम का व्यवहार है। राम ने रावण के अस्तित्व को कभी नहीं नकारा, किन्तु रावण राम के अस्तित्व को स्वीकारने के लिये कभी तैयार ही नहीं हुआ। यही विचार और व्यवहारे संघर्ष का जनक है, जिसका परिणाम विध्वंस/विनाश है। अनेकान्त में विनम्रता/सद्भाव है, जिसकी भाषा 'भी' है। यही अनेकान्त की दृष्टि दुनियाँ के भीतर-बाहर के तमाम संघर्षों को टाल सकती है। युग के

आदि में आदिनाथ के पुत्र भरत और बाहुबली के बीच वैचारिक टकराहट हुई, फिर युद्ध की तैयारियाँ होने लगी। मंत्रियों की आपसी सूझबूझ से उसे टाल दिया गया और निर्धारित दृष्टि, जल और मल्लयुद्ध के रूप में दोनों भ्राता अहिंसक-संग्राम में सामने आये। उस समय यह दो व्यक्तियों की लड़ाई थी। फिर राम-रावण का युग आया, जिसमें दो व्यक्तियों के कारण दो सेनाओं में युद्ध हुआ, जिस युद्ध में हथियारों का प्रयोग हुआ। हम और आगे बढ़े, महाभारत के काल में आये, जिसमें एक ही कुटुम्ब के दो पक्षों में युद्ध हुआ और अब दो देशों में युद्ध होता है। पहले भाई का भाई से, फिर व्यक्ति का व्यक्ति से, फिर एक पक्ष का दूसरे पक्ष से और अब एक देश का दूसरे देश से युद्ध चल रहा है। युद्ध का परिणाम सदैव विध्वंस ही निकलता है। हमें संघर्ष नहीं शान्ति चाहिए और यदि सचमुच ही हमने शान्ति का ध्येय बनाया है तो अनेकान्त का सिद्धान्त, 'भी' की भाषा, अनाग्रही व्यवहार को जीवन में अपनाना होगा।

अपरिग्रह

भगवान महावीर का तीसरा सिद्धान्त अपरिग्रह है। परिग्रह अर्थात् संग्रह। यह संग्रह मोह का परिणाम है। जो हमारे जीवन को सब तरफ से घेर लेता है, जकड़ लेता है, परवश/पराधीन बना देता है, वह है परिग्रह। धन/पैसा को आदि लेकर प्राणी के काम में आनेवाली तमाम वस्तु/सामग्री परिग्रह की कोटि में आती हैं। ये वस्तुएँ हमारे जीवन को आकुल-व्याकुल और भारी बनाती हैं। एक तरह से परिग्रह वजन ही है और वजन हमेशा नीचे की ओर जाता है। तराजू का वह पलड़ा जिस पर वजन ज्यादा हो, स्वभाव से नीचे की ओर जाता है; ठीक इसी तरह से यह परिग्रह मानव-जीवन को दुःखी करता है, संसार को डुबोता है। भगवान् महावीर ने कहा - या तो परिग्रह को पूर्णतः त्यागकर तपश्चरण के मार्ग को अपनाओ अथवा पूर्णतः त्याग नहीं कर सकते तो कम से कम आवश्यक सामग्री का ही संग्रह करो। अनावश्यक, अनुपयोगी सामग्री का तो त्याग कर ही देना चाहिए। आवश्यक में भी सीमा दर सीमा कम करते जायें। यही 'अपरिग्रह' का आचरण है, जो हमें निरापद, निराकुल और उन्नत बनाता है।

आत्म स्वातन्त्र्य

भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित एक सिद्धांत 'आत्म-

स्वातन्त्र्य' का है। इसे ही अकर्त्तावाद या कर्मवाद कहते हैं। अकर्त्तावाद का अर्थ है - "किसी ईश्वरीय शक्ति/सत्ता से सृष्टि का संचालन नहीं मानना।" ईश्वर की प्रभुता/सत्ता को मानना, पर कर्त्तृत्व में नहीं। भगवान् कृतकृत्य हो गये हैं, इसलिए अब वह किसी तरह के कर्त्तव्य में नहीं हैं। कण-कण और क्षण-क्षण की परिणति स्वतन्त्र/स्वाधीन है। प्रत्येक जीव अपने द्वारा किये हुए कर्मों का ही फल भोगता है। उसके शुभ कर्म उसे उन्नत और सुखी बनाते हैं जबकि अशुभ कर्म अवनत और दुःखी बनाते हैं। जन्नत और दोजख (स्वर्ग या नरक) का पाना प्राणी के द्वारा उपार्जित अच्छे-बुरे कर्मों का फल है। इसे किसी अन्य के कारण नहीं, अपने कर्म के कारण ही पाते हैं। यही अवधारणा कर्मवाद अथवा अकर्त्तावाद का सिद्धान्त है। कहा भी गया है -

कोऊ न काऊ सुख दुख करि दाता,
निज कृत कर्म भोग फल भ्राता।
कर्मप्रधान विश्व करि राखा,
जो जस करे सो तस फल चाखा ॥

यह सिद्धान्त इसलिए भी प्रासंगिक है कि हमें अपने किए गए कर्म पर विश्वास हो और उसका फल धैर्य, समता

के साथ सहन करें। वस्तु का परिणमन स्वतंत्र/स्वाधीन है। मन में कर्त्तृत्व का अहंकार न आये और ना ही किसी पर कर्त्तृत्व का आरोप हो। इस वस्तु - व्यवस्था को समझकर शुभाशुभ कर्मों की परिणति से पार हों, आत्मा की शुद्ध दशा प्राप्त करें। बस यही धर्म-चतुष्टय भगवान महावीर स्वामी के सिद्धान्तों का सार है। व्यक्ति जन्म से नहीं, कर्म से महान् बनता है। यह उद्घोष भी महावीर की चिन्तनधारा को व्यापक बनाता है। इसका आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति मानव से महामानव, कंकर से शंकर और भील से भगवान बन सकता है। नर से नारायण और निरंजन बनने की कहानी ही भगवान् महावीर का जीवन - दर्शन है।

किसी भी मनुष्य की सबसे बड़ी परीक्षा उसके आचार - विचार से नहीं बल्कि उसकी 'वाणी' से होती है।

जो व्यक्ति समस्त जगत के कल्याण के लिए सोचता है, उसका खुद का कल्याण तो अपने आप ही हो जाता है।

आर. के. हाऊस,
मदनगंज-किशनगढ़

पर्यावरण-पद

श्री पाल जैन 'दिवा'

सखे सुन हरियाली मन भाय।
सखे गुन हरियाली मन भाय।

पात-पात में प्राण बसे हैं, कोषा चेत जगाय।
हरितपर्ण नित रंग जमावे, सावन ज्यों हरियाय।
प्राणवायु के कोष लुटावे, सफल विटप सुमनाय।
मन तो सावन का अंधा है, केवल हरा सुझाय।
धरती के परिधान हरे हों, हरियाली नग छाय।
'जिओ और जीने दो' भाई, पर्यावरण शुधाय।

सखे सुन मनहि हरा हरयाय।
सखे गुन मनहि हरा हरियाय।

पादप के अंकुर स्वर्णाभा, नन्हें हाथ हिलाय।
मूंगा की छवि रंग चढ़ावे, चेता-चेत बुलाय।
प्राणवायु के घर बनने को, पात-पात थिरकाय।
शाखा की छाती पर फूटे, पात पूत हरषाय।
धरती माँ का रंग निराला, रस औ, रंग हराय।
रंग-बिरंगे सुमन लुभावे, पवन सुगन्ध फैलाय।
उड़े पराग मधुप पद लिपटे, भारी पाँव फलाय।
शीतल छाया की माया है, पर्यावरण सुभाय।

शाकाहार सदन
एल. 75, केशरकुंज, हर्षवर्द्धन नगर, भोपाल -3

अन्तर्मन की पुकार

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन

‘विधिदेवस्तानि घटयति, यानि नरो नैव चिन्तयति’- अपने नगर फिरोजाबाद में गत 21 मार्च को जो हुआ, उससे मन आहत है। घटना के पीछे कोई भी तात्कालिक कारण नजर नहीं आता। कोई पुरानी गाँठ हो तो सर्वज्ञ जाने। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि अहिंसा-प्रधान जैनसंस्कृति में विचार का उत्तर विचार से तो दिया जा सकता है, किन्तु प्रहार से कदापि नहीं। मतभेद को मनभेद में बदलना हिंसा है, उससे सभी को बचना चाहिए।

इस घटना पर पहली प्रतिक्रिया ‘समन्वय वाणी’ के ताजा अंक में पढ़ने को मिली है। प्रिय भाई अखिल जी ने उसके पीछे जो नए अनुमान और नए अर्थ खोजे हैं, उस पर कुछ भी कहकर हम किसी की खुशी को कम नहीं करना चाहते। कल्पना करने के लिए तो सभी जीव स्वतन्त्र हैं। हमारे लिए तो यही सन्तोष की बात है कि नए जख्म देकर भी उन्होंने घटना की निन्दा ही की है।

इस ‘अघटित घटित’ के बाद हमें एक चीनी विचारक चिंग चाओ की ये पंक्तियाँ बार-बार याद आती हैं-

“जो समय चिन्ता में गया, समझो कूड़ेदान में गया।
जो समय चिन्तन में गया, समझो तिजोरी में गया।”

अब तक धर्म और समाज के क्षेत्र में होनेवाली अरुचिकर घटनायें हमें चिन्ता में डालती थीं, किन्तु इस घटना ने हमारे लिए चिन्तन के नए द्वार खोले हैं। इस चिन्तन के मध्य रोशनी की एक किरण ने हमें सोते से जगाकर कहा है- “वत्स! अब तुम सभी झमेलों से दूर रहो। तुम केवल सुझाव दे सकते हो, किन्तु किसी को सुधार नहीं सकते। यदि सुधारना चाहते हो तो केवल स्वयं को सुधारो।”

अपने जीवन के 72 वें बसन्त में रोशनी की इस किरण ने कुछ संकल्प लेने के लिए हमें प्रेरित किया है-

हम किसी संस्था में अब कोई नया पद स्वीकार नहीं करेंगे। पद ही तो विपद का कारण है। शास्त्रपरिषद् के अध्यक्षपद से आगामी दो-तीन माह में हम ‘रिटायर’ होने जा रहे हैं और स्वान्तः सुखाय ‘जैनगजट’ के सम्पादन-दायित्व से मुक्त होने का मन भी हमने बना लिया है। त्यागपत्र तो हम गत वर्ष 29 जून को ही दे चुके थे, किन्तु नवम्बर में कुछ बिन्दुओं पर सहमति बनने और अपने शुभ-चिन्तकों के स्नेहपूर्ण अनुरोध का आदर करते हुए हमने पुनः

नए उत्साह से कार्य शुरू कर दिया था, पर अब लगता है कि यह हमारी भूल थी। उस समय जिन बिन्दुओं पर सहमति बनी थी, उनमें दो बिन्दु मुख्य थे- (1) शिथिलाचार को महिमा-मण्डित नहीं किया जायेगा तथा (2) सिद्धान्तों पर व्यावसायिकता की छाया न पड़े, ऐसा प्रयास होगा। यह नहीं हो सका, इसमें हमारी ही कोई कमी रही होगी।

लिखना-बोलना तो हमारे लिए श्वास की तरह जरूरी है, पर अब हम केवल सकारात्मक ही लिखेंगे और किसी की नुक्ताचीनी करने से बचेंगे। कोशिश करेंगे कि ‘गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।’

हर दशा में संयत और अनुशासित रहेंगे। प्रशंसा में फूलेंगे नहीं और निन्दा या आलोचना में आपा नहीं खोयेंगे। तकदीर यदि जहन्नुम भी अता करेगी तो उसे भी बहिश्त मानकर आनन्दित बने रहने का पुरुषार्थ करेंगे।

सभी लोग दुआ दें कि हम इन संकल्पों का ठीक से निर्वाह कर सकें। यदि कहीं स्खलन दिखे तो मित्रगण हमें सावधान अवश्य करते रहें।

एक आवश्यक स्पष्टीकरण

‘जैनगजट’ के 2 दिसम्बर के अंक में शास्त्रपरिषद् के अध्यक्ष के नाते हमारी एक सामयिक अपील ‘समय की पुकार’ शीर्षक से छपी थी, जिसका प्रबुद्धजनों ने स्वागत किया था। गत 24 फरवरी के अंक में ‘जिनभाषित’ में श्री मूलचन्द जी लुहाड़िया के एक लेख के प्रत्युत्तर में ब्र. विशल्य भारती के नाम से एक लम्बा लेख छपा, जिसकी वजह से हमें लोगों की रोषभरी बातें सुननी पड़ीं। कई पाठकों ने कड़े पत्र लिखे और कई ने फोन पर नाराजी व्यक्त की। म.प्र. श्रमजीवी पत्रकार संघ के अध्यक्ष श्री प्रकाश जैन ‘रोशन’ ने तो अपने 6 मार्च के पत्र में इस आलेख को एकपक्षीय बताते हुए लिखा कि हमने ब्र० पोटी के अनेक विचार आपको भेजे, पर आपने उन्हें नहीं छापा। क्या यह आपकी कथनी और करनी के अन्तर को उजागर नहीं करता? और भी ऐसे बहुत से ‘कमेण्ट्स’ हैं, जिन्हें हम लिखना या दुहराना नहीं चाहते।

हमें पहले से ही यह आभास था कि इस लेख के छपते ही तीखी प्रतिक्रियायें होंगी, इसीलिए हमने इस लेख को प्रकाशित करने की अनुमति नहीं दी थी। श्रीमान् सेठीजी

ने अपने अध्यक्षीय विशेषाधिकार से इस लेख को छपा दिया। आम पाठक तो यही समझता है कि पत्र में जो भी छपता है, उसके लिए सम्पादक ही उत्तरदायी है। कोई भी यह मानने को तैयार नहीं है कि उसकी सहमति के बिना भी कुछ छप सकता है। यहाँ कहा जा रहा है कि 29 मार्च की घटना में इस लेख से उपजा आक्रोश भी एक कारण है। यद्यपि वह थी तो एक बचकानी शरारत ही, फिर भी इस लेख के सन्दर्भ में यह स्पष्टीकरण देना हम आवश्यक समझते हैं।

यह आलेख प्रकाशित करने के लिए श्रीमान् सेठीजी ने अपने कवरिंग लेटर (दिनांक 5 जनवरी 2005) के साथ भेजा था। बाद में श्री प्रसन्न आग्नेकर, कारंजा (महाराष्ट्र) के द्वारा डाक से प्रेषित यही आलेख हमें पुनः मिला। यह छह पृष्ठों में टाईप किया हुआ आलेख मुनि श्री विश्वेशसागरजी एवं ऐलक श्री विवर्धनसागरजी के नाम से था, परन्तु उस पर उनके हस्ताक्षर नहीं थे। बिना हस्ताक्षर का लेख हम कैसे छापते! फिर हमें यह भी पसन्द नहीं था कि वीतरागमार्ग के पथिक आज के राजनेताओं की तरह रागद्वेषवर्धक ऐसी बहसों में उलझें। सन्तों को तो स्वदोष-शान्ति की भावना रखते हुए अपने अशुभ कर्मोदयजन्य पाप-ऋण को समतापूर्वक चुकाने का पुरुषार्थ करना चाहिए। लम्बी बयानबाजी करना तो नेताओं का गुण है, सन्तों का नहीं। हमने अपना मन्तव्य श्रीमान् सेठीजी को स्पष्ट बता दिया था, पर उन्होंने इसे ब्र० विशल्य भारती, जो इसके लेखक नहीं हैं, के नाम से छपा दिया। लोगों ने इसके लिए जिम्मेदार हमें समझा।

श्रीमान् सेठीजी के सेवा-समर्पण के हम प्रशंसक रहे हैं, आज भी हैं, पर कुछ प्रसंगों पर हम उनसे सहमति नहीं रखते। आज जो वातावरण है, उसमें शिथिलाचार के निवारण को हम एक अशक्यानुष्ठान मानते हैं। समाज इस मुद्दे पर दो खेमों में बँटा हुआ है। हर खेमा इलजाम की गेंद को दूसरे के पाले में ठेलता रहता है। आत्मावलोकन के लिए कोई भी तैयार नहीं है। जरा-जरा सी बात पर कषाय भड़क उठती है। अपना-अपना स्वार्थ साधने की प्रवृत्ति भी अपना काम करती है। ऐसी स्थिति में हमने ऐसे प्रसंगों पर माध्यस्थ भाव बनाए रखने पर जोर दिया है। हमारी नीति रही है कि शिथिलाचार की हम निन्दा न कर सकें तो कोई बात नहीं, पर उसे 'हाईलाइट' भी नहीं करना चाहिए। कुछ लोग इससे सहमत नहीं हैं। सबकी अपनी-अपनी राय है, कोई क्या कर सकता है!

अभी दिनांक 10 मार्च के अंक में भाई भरत काला ने भी एक चुभने वाली पंक्ति लिख दी- "कपड़ों में रहकर साधु की श्रेष्ठता की मात्र चर्चा कर कीचड़ फेंकनेवाले तथाकथित प्राचार्य डाक्टर डिग्रियों से युक्त विद्वानों का कोलाहल अपने आप बन्द हो जायेगा, यह निश्चित है (पृष्ठ 7 कालम 2)।" उनका अभिप्राय या संकेत किसकी ओर है और क्यों हैं, यह तो वह जानें, पर ऐसे कूटलेखन से हमें कष्ट हुआ है।

महासभा के सर्वोच्च पदाधिकारी और उसके मुखपत्र के सम्पादक के मध्य यदि विचार-साम्य नहीं होगा तो भ्रम भी फैलेंगे और कठिनाइयाँ भी बढ़ेंगी। इसलिए दो दिन पूर्व ही हमने उनसे फोन पर हमारे 29 जून के त्यागपत्र को अविलम्ब स्वीकार करने का नम्र निवेदन कर दिया है। हमारा यह निर्णय अपरिवर्तनीय है। एक पाठक एवं एक लेखक के रूप में हम, यदि वह चाहेंगे तो, पत्र से भविष्य में भी जुड़े रहेंगे। यह कदम हम अपनी मनःशान्ति के लिए उठा रहे हैं।

क्षमा प्रार्थना

गत 22 वर्षों से हम 'जैनगजट' से जुड़े रहे हैं। इस अवधि में अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यथाशक्ति जितनी और जैसी सेवा हमसे बन पड़ी, हमने की है। इस लम्बी अवधि में बहुत-सी भूलें भी जाने या अनजाने में हुई होंगी। हम हृदय से उनके लिए क्षमाप्रार्थी हैं। महासभा के अनगिन सदस्यों और पदाधिकारियों का जो प्यार हमें मिला, उसके प्रति कृतज्ञ हैं।

हमारे किसी भी कथन या क्रिया से सन्तों के मन को कोई ठेस पहुँची हो तो यह भी हमारे लिए प्रायश्चित और पश्चाताप का विषय है। जिस सन्त के जीवन में अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है, उसके सान्निध्य में तो शत्रुता रखनेवाले प्राणी भी वैर त्याग देते हैं (अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैरत्यागः - पातंजल योगदर्शन)। उनकी उस समता को नमन।

एमर्सन के इस कथन को अपने दृष्टिपथ में रखकर हम विराम ले रहे हैं-

"यदि तुम पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकते हो तो जितने स्वतन्त्र हो सको, उतने ही हो जाओ।"

जीवन्तु जन्तवः सर्वे क्लेश-व्यसनवर्जिताः।

प्राप्नुवन्तु सुखं त्यक्त्वा वैरं पापं पराभवम्॥

104, नई बस्ती, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

जैन संस्कृत महाविद्यालयों की दशा और दिशा : एक चिन्तन

धर्मचंद्र वाझल्य

डॉ. अनेकान्तकुमार जैन का 'जिनभाषित' पत्रिका अंक फरवरी-मार्च 2005 में 'जैन संस्कृत महाविद्यालयों-छात्रों की दशा और दिशा' लेख पढ़ा। उनका अनुभव-परक लेख मन को झिंझोड़ता है। विद्यार्थी में अन्तर्द्वंद्व क्यों उठा उसका कारण उसे स्वयं या उसके अभिभावकों को खोजना होगा। अध्ययन हेतु विषय सुनिश्चित करने के पश्चात् विद्यालयों में प्रवेश किया जाता है। एक बार जब विषय चुन लिया गया तो छात्र को कैरियर भी वहीं बनाने का संकल्प करना होगा, अन्यथा 'पढ़े फारसी बेचें तेल ये देखो कर्मों के खेल' वाली कहावत चरितार्थ हो जायेगी। भ्रम रोग से ग्रसित विद्यार्थी का मन न तो पढ़ने में लगेगा न ही कैरियर बना पायेगा। कैरियर और अध्ययन को अलग-अलग करना भूल होगी। वैसे यह भ्रम रोग प्रायः सभी जगह सभी विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले छात्रों में देखा जाता है। ऐसे विद्यालयों का क्या उद्देश्य है इस पर भी दृष्टिपात करना होगा। समाज में जैनधर्म विषयक विद्यालय दो उद्देश्यों से खोले गये हैं :-

1. जैन दर्शन में अन्वेषण, प्रचार-प्रसार एवं विभिन्न संस्थाओं में प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध कराना।
2. ऐसे बच्चे जो आर्थिक कठिनाई के कारण शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं उन्हें सस्ती, अच्छी एवं धार्मिक शिक्षा उपलब्ध कराना, जिससे उनका चरित्रनिर्माण हो सके एवं समाज को जैनधर्म के विद्वान मिल सकें।

अब प्रश्न उठता है कि क्या संस्थापक अपने उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल हैं एवं पाठ्यक्रम में सुधार की आवश्यकता है ?

डॉ. अनेकान्तकुमार जी के लेख से लगता है कि ऐसे विद्यालय अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल नहीं हैं। मैं इस बात से असहमत हूँ, क्योंकि इन विद्यालयों ने वर्तमान में डॉ. अनेकान्तकुमार जैसे विद्वान व्यक्ति समाज को दिये हैं।

यदि शास्त्रीय पद्धति से शिक्षित युवक से समाज अपेक्षा रखती है की वे धर्मप्रचार करके संस्थाओं को चलाने

में संसाधन जुटाये तो इसमें कोई दोष नहीं है। इसके साथ शास्त्रीय परीक्षा पास युवक लेखन, अन्वेषण इत्यादि कार्य कर अपना कैरियर भी बना सकता है। यदि ऐसे युवक यह अपेक्षा रखते हैं कि शास्त्री परीक्षा पास करने के बाद उन्हें आई.ए.एस., आई.पी.एस. इत्यादि समकक्ष परीक्षाओं में बैठने का अवसर मिले तो, यह भी संभव है।

जहां तक सांप्रदायिक मनोवृत्ति का प्रश्न है उससे बच पाना अत्यंत कठिन है? मिथ्यात्व तो सम्यक्त्व के विपरीत है। अन्य शास्त्रों का अध्ययन करना एवं दोनों में विवेकपूर्वक भेद करना विद्यार्थी नहीं सीखता है, तो उसे सिखाया जाना अनिवार्य है। जब तक अन्य ग्रंथों का अध्ययन नहीं करेंगे तब तक श्रद्धा दृढ़ नहीं हो सकती। अब कई ऐसे प्रश्न उठते हैं जिनका उत्तर लेखक को सुझावरूप में देना ही चाहिए। मात्र समस्या उछाल देना पर्याप्त नहीं है, उसका संभावित समाधान भी वे विद्वान ही दे सकते हैं जिन्होंने समस्या का सामना किया है। प्रश्न ये हैं-

1. सही नियोजन आप किसे समझते हैं एवं उसके लिए क्या सुझाव हैं ?
2. चिरकालिक वृहद् योजना क्या हो सकती है ?
3. प्रतिभा का सदुपयोग क्या है और किसे करना है ?

यदि स्नातक स्वयं अपनी प्रतिभा का सदुपयोग नहीं कर पाता है, तो उसमें विद्यार्थी का एवं समाज का दोनों का दोष हो सकता है। देखने में यह आया है शास्त्रीपरीक्षा उत्तीर्ण ही नहीं, अन्य विषयों में उत्तीर्ण स्नातक उदाहरण के लिये इंजीनियरिंग, कामर्स, मेडिकल फील्ड से निकले छात्र भी अपनी शिक्षा का सही-सही उपयोग नहीं कर पाते हैं। इसके कारण अनेक हो सकते हैं। यदि आप सारा दोष धार्मिक शिक्षा और समाज पर थोप दें, तो भी ठीक नहीं है। चिन्तन कर समाधान देना होगा एवं रचनात्मक कार्यक्रम बनवाकर बिना नगाड़ा बजाये क्रियान्वयन कराना होगा।

ए-91, शाहपुरा भोपाल

कानून के ऊपर कोई नहीं

जस्टिस पानाचंद जैन (रि.)

“सुप्रीम का फैसला, जैनों को धार्मिक अल्पसंख्यक का दर्जा राज्य सरकारें करेंगी” शीर्षक से एक समाचार प्रकाशित हुआ। शीर्षक के नीचे जो समाचार प्रकाशित हुआ उसका, अर्थ था कि अब जैन समाज को धार्मिक अल्पसंख्यक दर्जा प्राप्त करने के लिये अपने अपने प्रदेशों की सरकार पर दबाव बनाना पड़ेगा। इस खबर से कई भ्रांतियां पैदा हो गईं।

दिनांक 25 नवम्बर 2004 को हिन्दुस्तान टाइम्स व हिन्दी के समाचार पत्रों में यह समाचार प्रकाशित किया गया है कि केन्द्र सरकार की केबिनेट कमेटी (राजनैतिक मामलों) ने जिसकी अध्यक्षता माननीय प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने की थी, जिसमें रक्षा मंत्री माननीय श्री प्रणव मुखर्जी और कानून मंत्री माननीय श्री हंसराज भारद्वाज उपस्थित थे, ने यह निर्णय लिया है कि जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित करने का अधिकार केन्द्र को न होकर राज्य सरकार को है और ऐसा निर्णय लेने के लिए केन्द्र सरकार ने टी.एम.ए.पाई के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय का आधार लिया है। केन्द्र सरकार ने यह निर्णय क्यों कर लिया इस स्थिति की विवेचना पर यदि प्रकाश डालें तो ज्ञात होगा कि बाल पाटिल (वर्तमान में महाराष्ट्र स्टेटे माइनोरिटी कमीशन के सदस्य हैं) ने सन् 1997 में एक रिट याचिका (5009/97) बम्बई उच्च न्यायालय में प्रस्तुत की थी कि भारत सरकार को निर्देशन दिया जावे कि नेशनल कमिशन फॉर माइनोरिटीज की दिनांक 03.10.94 की सिफारिश के अनुसार जैन समाज को धारा 2 (सी) नेशनल माइनोरिटी कमीशन एक्ट, 1992 के तहत दिनांक 03. 10. 94 की विज्ञप्ति में अन्य अहिन्दु स्वतंत्र धार्मिक समूह के साथ जैनों को भी शामिल किया जावे। बम्बई उच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 20. 10. 97 के आदेश में यह निर्देशन दिया कि सरकार ने न्यायालय के निर्णय की अवज्ञा करते हुये कोई निर्णय ही नहीं लिया इस कारण श्री बाल पाटिल को पुनः एक नई रिट याचिका संख्या 4066/98 प्रस्तुत करनी पड़ी। सरकार ने इस याचिका का उत्तर यह कहकर दिया कि इस सम्बन्ध में टी. एम. ए. पाई. के फाउण्डेशन द्वारा एक याचिका में यही प्रश्न सुप्रीम कोर्ट की वृहत पीठ के समक्ष विचाराधीन है। फलस्वरूप बम्बई न्यायालय ने रिट याचिका पर सुनवाई कर निर्णय देना उचित न समझ कर याचिका का निस्तारण कर दिया। किन्तु विचार बिन्दुओं को जीवित रखा। इस आदेश के विरुद्ध श्री बाल

पाटिल ने सुप्रीम कोर्ट में अपील की जो अपील नं. 30/99 है। इधर टी. एम. ए. पाई. के केस को सुप्रीम कोर्ट की वृहत पीठ ने दिनांक 31. 10. 2002 को निर्णय दे दिया, किन्तु उस केस में श्री बाल पाटिल द्वारा उठाये गये प्रश्नों का न तो उल्लेख था और न विवेचना ही। सुप्रीम कोर्ट ने श्री पाटिल की अपील पर दिनांक 29. 07. 2004 को एक आदेश दिया था कि चूंकि अल्पसंख्यक नेशनल कमीशन की सिफारिश जब 10 वर्ष से लम्बित है तो भारत सरकार का कर्तव्य है कि वह इस सम्बन्ध में निर्णय ले कि क्या जैन समाज को धारा 2 (सी) के अन्तर्गत जारी विज्ञप्ति में शामिल किया जाना चाहिए, और अपना निर्णय 4 माह की अवधि में कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत करें।

भारत सरकार ने ऐसा प्रतीत होता है विषय की गरिमा पर, केस के समस्त पहलुओं पर विचार किये बिना ही जल्दबाजी में निर्णय ले लिया, और अपना निर्णय शपथ पत्र के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया। शपथ पत्र प्रस्तुत किया गया श्री स्वप्नराय ने, जो केन्द्र सरकार के मिनिस्ट्री ऑफ सोशियल जस्टिस व एम्पावरमेण्ट में संयुक्त सचिव हैं। शपथ पत्र में श्री स्वप्नराय ने निम्नलिखित घोषणा की है।

“सर्वोच्च न्यायालय ने टी.एम.ए. फाउण्डेशन के केस में जो निर्णय दिया है, उसके अनुसार राज्य को अल्पसंख्यक वर्ग के निर्धारण के हेतु इकाई माना गया है। अतएव राज्य सरकारें ही यह निर्णय लेगी कि जैन समुदाय को अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जावे या नहीं और इसके लिये वह राज्य की परिस्थितियों को ध्यान में रखेगी।”

टी.एम.ए. पाई फाउण्डेशन का केस जो 2002 (8) एस.सी.सी. 481 में प्रकाशित हुआ है सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय लिया था कि धार्मिक व भाषाई माइनोरिटीज भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30 में उल्लेखित “अल्पसंख्यक वर्ग” में आती है। चूंकि राज्यों का पुनर्गठन देश में भाषायी आधार पर हुआ है इसलिये अल्पसंख्यक के वर्गीकरण हेतु भी राज्य को ही एक इकाई माना जाना चाहिये। इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत भाषा व धर्म के नाम पर अल्पसंख्यक वर्ग के दर्जे का निर्णय राज्य के स्तर पर होगा न कि पूरे देश के स्तर पर।

शपथ पत्र में संयुक्त सचिव ने सर्वोच्च न्यायालय

को यह भी सूचना दी कि छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल राज्यों में जैनों को धार्मिक अल्पसंख्यक समाज का दर्जा दिया जा चुका है। शपथ पत्र में इस तथ्य को छिपाया गया कि मध्य प्रदेश राज्य, झारखण्ड व राजस्थान की सरकारें भी जैनों को अल्पसंख्यक वर्ग का दर्जा दे चुकी हैं तथा दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई, मद्रास के हाईकोर्ट्स भी जैनों को अल्पसंख्यक मान चुके हैं।

टी.एम.ए. पाई फाउण्डेशन के केस में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि जम्मू कश्मीर में मुस्लिम बहुमत में हैं, इसलिये हिन्दू अल्पसंख्यक हैं तथा पूर्वी राज्यों में ईसाई समुदाय बहुमत में हैं, इसलिये हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। पंजाब में सिख समुदाय अल्पसंख्यक में न होकर हिन्दू अल्पसंख्यक है। यदि टी.एम.पाई फाउण्डेशन के केस के सिद्धांतों की समीक्षा की जावे तो केवल जैन समुदाय ही प्रत्येक राज्य, प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट्स में अल्पसंख्यक पाये जावेंगे। दिल्ली राज्य केन्द्र शासित है वहां की सरकार यह मानती है कि केन्द्र को ही जैन समुदाय को अल्पसंख्यक का दर्जा देना होगा। टी.एम.ए.पाई के केस में यह कहीं उल्लेख नहीं है कि केन्द्र सरकार को अल्पसंख्यकता के सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। यदि केन्द्र सरकार यह मानती है कि केन्द्र को अल्पसंख्यकता के सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार नहीं है तो अब तक जिन-जिन धार्मिक समुदायों को अल्पसंख्यक वर्ग का दर्जा दिया गया है वह अमान्य व अधिकार शून्य है। विज्ञप्ति दिनांक 23-10-1993 प्रभाव शून्य है, जिसके द्वारा मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी को धार्मिक अल्पसंख्यक माना गया है। इन धर्मों के साथ जैन धर्म भी एक स्वतंत्र धर्म है, इसलिए उसे अल्पसंख्यक न मानना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिरेक है, उल्लंघन है।

वस्तुतः प्रस्तुत केस में इन विषयों पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 29-08-2004 में यह निर्देशन दिया था कि केन्द्र सरकार 4 माह में अपने निर्णय से न्यायालय को सूचित करेगी कि क्या जैन समुदाय अल्पसंख्यक है या

नहीं। इस प्रकार केन्द्र सरकार के लिये यह आवश्यक ही नहीं अपितु बाध्यकारी था कि वह अपने निर्णय से न्यायालय को सूचित करे। केन्द्र सरकार को निर्देशन के औचित्य पर टीका टिप्पणी करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशन की पालना करना केन्द्र सरकार का कर्तव्य है और न मानना न्यायालय की अवमानना है। यह केस इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के आदेश की अवमानना का है।

पृथ्वीनाथ राम बनाम स्टेट ऑफ झारखंड व अन्य के केस में जिसका निर्णय दिनांक 13-08-2004 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिया है, यह करार दिया है कि पक्षकार का कर्तव्य है कि वह न्यायालय के निर्देशनों की पालना करे, उसके औचित्य अथवा गुण-दोष पर विचार करने का उसको कोई अधिकार नहीं है। कानून की सलाह पर निर्देशनों के औचित्य पर विचार नहीं किया जा सकता। निर्देशन की पालना न करना न्यायालय की अवमानना है इस निर्णय में न्यायालय ने के.जी. देराशरी बनाम यू. ऑफ इंडिया 2001 (10) एस.सी.सी. 496 व टी आर धनजय बनाम वसुदेवा 1995 (5) ए.सी.सी. 619 का आधार मान लिया है।

इस प्रकार हम उपरोक्त निर्णयों के संदर्भ में केस की विवेचना करें तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि भारत सरकार को सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशन अनुसार अपना निर्णय देना बाध्यकारी था और ऐसा न कर भारत सरकार ने न्यायालय की अवमानना की है। शपथकर्ता श्री स्वप्रराय संयुक्त सचिव व मंत्रीगण केन्टेम्प्ट ऑफ कोर्ट के जुर्म के दोषी हैं उनके विरुद्ध कार्यवाही कर सजा दिलाने के लिये उचित कदम उठाने चाहिये, ताकि भारत सरकार के मंत्रीगण व अधिकारी सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशनों को पालना न करने का दुःसाहस न कर सकें। और न्यायालय की गरिमा की प्रतिष्ठा अक्षुण्य रहे और यह धारणा बलवती हो उठे कि- By You ever high the law is above you अर्थात् कानून के ऊपर कोई नहीं है।

23, मौजी कॉलोनी,
मालवीय नगर, जयपुर

आचार्य विद्यासागर जी के सुभाषित

- समता का अर्थ पक्षपात नहीं है किन्तु यह तो माध्यस्थ भावों की एक ऐसी भूमिका है जहाँ पर न वाद है न विवाद।
- साधक के लिये अन्य सभी शरण तात्कालिक हो सकती हैं पर उसे समता ही एक मात्र शाश्वत शरण है।
- जरा-जरा सी बातों में क्षुब्ध होना ज्ञानी की प्रौढ़ता नहीं है, ज्ञानी की प्रौढ़ता की झलक समता में है।
- समता भाव ही श्रामण्य है उसी में श्रमण की शोभा है।

'सागर बूंद समाय'

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता : संगीता पवन कुमार जैन, नन्दुरबार

जिज्ञासा : जीवन्धर स्वामी और भ. वर्धमान समकालीन थे। इनमें से पहले मोक्ष कौन गया ?

समाधान : जीवन्धरकुमार का सबसे प्राचीनतम चरित्र वर्णन उत्तर पुराण के 75वें पर्व में प्राप्त होता है। 75वें पर्व के श्लोक नं. 183 से श्लोक नं. 651 तक अत्यंत मनोहर जीवन्धर स्वामी के चरित्र का वर्णन है। इस पर्व के श्लोक नं. 685 से 687 में इसप्रकार कहा है :

भवता परिपृष्टोऽयं जीवन्धरमुनीश्वरः ।

महीयान् सुतपा राजन् संप्रति श्रुतकेवली ॥ 685 ॥

घातिकर्माणि विध्वंस्य जनित्वा गृहकेवली ।

सार्धं विहृत्य तीर्थेशा तस्मिन्मुक्ति मधिष्ठिते ॥ 686 ॥

विपुलाद्रौ हताशेषकर्मा शर्माग्रमेष्यति ।

इष्टाष्टगुणसंपूर्णो निष्ठितात्मा निरञ्जनः ॥ 687 ॥

अर्थ : सुधर्माचार्य राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन! तूने जिसके विषय में पूछा था वे यही जीवन्धर मुनिराज हैं, ये बड़े तपस्वी हैं और इस समय श्रुतकेवली हैं। घातिया कर्मों को नष्टकर ये अनगर केवली होंगे और श्री महावीर भगवान के साथ विहारकर उनके मोक्ष चले जाने के बाद विपुलाचल पर्वत पर समस्त कर्मों को नष्टकर मोक्ष का उत्कृष्ट सुख प्राप्त करेंगे। वहाँ ये अष्टगुणों से सम्पूर्ण, कृतकृत्य और निरंजन कर्म कालिमा से रहित हो जावेंगे।

उपरोक्त प्रमाण के अनुसार पहले भगवान वर्धमान मोक्ष पधारे उसके बाद जीवन्धरकुमार को मोक्ष हुआ था।

जिज्ञासा - सिद्धालय में पुद्गल द्रव्य सिद्धभगवन्तो पर क्या उपकार कर रहा है ?

समाधान - पुद्गलकृत उपकार का वर्णन तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय 5 के 19वें और 20वें सूत्र में कहा गया है:-

शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ 19 ॥

सुख-दुःख जीवित मरणोपग्रहाश्च ॥ 20 ॥

अर्थ : शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है ॥ 19 ॥

उपरोक्त सभी पुद्गलकृत उपकार अशुद्ध जीव पर ही संभव हैं। वर्तमान में जो सिद्ध भगवान सिद्धालय में विराजमान हैं, उन पर कोई भी उपकार संभव नहीं है। अतः वर्तमान में

सिद्धालय में विराजमान सिद्ध भगवन्तो पर किसी भी पुद्गल द्रव्य का कोई भी उपकार नहीं मानना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : श्रीमती ज्योति लुहाड़े, कोपरगांव

जिज्ञासा : आयुकर्म का संघातन, परिशातन से कोई संबंध है क्या ?

समाधान : श्री धवलापुस्तक-9, पृष्ठ 26-27 पर संघातन, परिशातन की परिभाषा इस प्रकार कही है- 'पाँचों शरीरों में से विवक्षित शरीर के परमाणुओं का निर्जरा के बिना जो संचय होता है उसे संघातन कृति कहा जाता है।'

भावार्थ : पाँचों शरीरों के योग्य नोकर्म वर्गणाओं के समूह को प्रत्येक जीव प्रतिसमय ग्रहण करता है। वह ग्रहण करना संघातन कहा जाता है और प्रतिसमय शरीर से जो नोकर्म वर्गणायें निर्जरित होती हैं उसे परिशातन कहा जाता है। यह संघातन-परिशातन की क्रिया केवल पाँचों शरीरों के योग्य नोकर्म वर्गणाओं में होती है अन्य में नहीं। आयुकर्म की कार्मण वर्गणाओं की तो बंध और निर्जरा होती है। इसप्रकार आयुकर्म का संघातन-परिशातन से कोई संबंध नहीं है।

जिज्ञासा : परिहारविशुद्धि चारित्र वाले मुनि के छेदोपस्थापना चारित्र होता है अथवा नहीं ?

समाधान : परिहारविशुद्धि संयम के धारी मुनिराज सामायिक और छेदोपस्थापन चारित्र के धारी होते हैं। इस संबंध में पंचसंग्रह में इसप्रकार कहा है, 'पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सया वि जोहु सावज्जं। पंचजमेयजमो वा परिहारयसंजदो साहू (131)

अर्थ - पाँच समिति और तीन गुप्तियों से युक्त होकर सदा ही सर्व सावद्य योग का परिहार करना तथा पाँच यमरूप भेद संयम (छेदोपस्थापना) को अथवा एक यमरूप अभेद संयम (सामायिक) को धारण करना परिहार विशुद्धि संयम है और उसका धारक साधु परिहार विशुद्धि संयत कहलाता है।'

भावार्थ - परिहार विशुद्धि चारित्र वालों के सामायिक और छेदोपस्थापना दोनों चारित्र होते हैं।

श्लोकवर्तिक में तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 9/47 की टीका करते हुए आ.विद्यानन्द महाराज ने लिखा है कि, 'कषाय कुशील साधु तो सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसांपराय नाम के चारों संयमों में प्रवृत्त रहे हैं। अर्थात् कषाय कुशील मुनियों के चारों चारित्र पाये जाते हैं।'

तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 10/9 की टीका करते हुए सभी आचार्यों ने पाँचों चारित्र वाले मुनियों को सिद्धपद प्राप्त होने की

अपेक्षा से भी सिद्धों में भेद स्वीकार किया है अर्थात् कुछ ऐसे भी मुनिराज होते हैं, जिनके पाँचों चारित्र पाये जाते हैं अर्थात् परिहारविशुद्धि चारित्र के साथ छेदोपस्थापना चारित्र का होना असंभव नहीं है।

जिज्ञासा : क्या ऋद्धियों के साथ श्रेणी आरोहण संभव है ?

समाधान : ऋद्धियों के साथ श्रेणी आरोहण करने में कोई आपत्ति नहीं है अर्थात् अवधिज्ञान या मनःपर्ययज्ञान ऋद्धि को धारण करने वाले मुनिराज श्रेणी आरोहण कर सकते हैं या सर्वपूर्वत्व ऋद्धि को धारण करने वाले मुनिराज श्रेणी आरोहण कर सकते हैं। परन्तु इतना अवश्य जानना चाहिए कि ऋद्धियों का प्रयोग करते हुए श्रेणी आरोहण संभव नहीं है। क्योंकि ऋद्धि आरोहण करते समय शुक्ल ध्यान रूप महान एकाग्रता की आवश्यकता होती है जो ऋद्धि प्रयोग करते समय संभव नहीं है।

जिज्ञासा : क्या चतुर्थ गुणस्थान में आत्मानुभूति होती है ?

समाधान : इस प्रश्न का उत्तर आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने 'सम्यक्त्वसारशतकम्' नामक ग्रंथ में बहुत सुंदर दिया है। उसी के अनुसार यहाँ लिखा जाता है, 'जब संज्वलन कषाय का तीव्र उदय न होकर मंद उदय होता है, तब यह जीव अपने पुरुषार्थ से उसमंद उदय को दबाकर या नष्ट करके अपने आप में लीन हो जाता है, उस लीन होने को आत्मानुभव या आत्मानुभूति कहते हैं। यही स्वरूपाचरण चारित्र है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को आत्मानुभूति तो नहीं होती मगर आत्म तत्व का विश्वास जरूर होता है। जैसे- किसी व्यक्ति के तीन पुत्र हैं, जिन्होंने नमक की डेली को उठाकर खाया वह नमकीन लगी, फिर जब उनको मिश्री के डेले दिये तो उन्होंने उनको भी नमक मानकर दूर फेंक दिया। तब पिता ने कहा यह नमक नहीं किन्तु मिश्री है एवं नमकीन नहीं, मीठी है। परन्तु पुत्रों ने नहीं माना। बाद में जब मिश्री के डेले पर मक्खियाँ भिनभिनाने लगीं और नमक के डेले पर मक्खियाँ नहीं गईं तब पिता ने फिरसमझाया। तीन पुत्रों में से एक पुत्र को फिर भी विश्वास नहीं हुआ। अन्य दो पुत्रों में से एक पुत्र ने कहा कि पिताजी कह रहे हैं अतः यह मिश्री ही होगी, मीठी ही होगी। परन्तु तीसरे पुत्र ने तुरन्त मिश्री की डेली को उठाकर चखा और कहा अहा, सचमुच मिश्री है, मीठी है। इसीप्रकार से मिथ्यादृष्टि को तो आत्मतत्व पर विश्वास ही नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टि को आत्मविश्वास मात्र ही होता है परन्तु शुक्लध्यानी जीव को आत्मानुभूति अथवा आत्मानुभव रूप आनन्द की प्राप्ति होती है।

यदि कोई गृहस्थ होते हुए भी अपने आत्मस्वरूप का

चिंतवन कर रहा हो, जैसे-मैं शुद्ध-बुद्ध सच्चिदानंद हूँ, मेरे अंदर राग-द्वेष वगैरह कुछ भी नहीं है, तो उस समय भी उस जीव के आत्मानुभव नहीं कहा जा सकता। यह आदमी तो उस भिखारी की तरह पागल है, जो जन्म से दरिद्र होते हुए भी अपने आपको चक्रवर्ती मान रहा हो। इससे तो वह मिथ्यादृष्टि कुछ अच्छा है जो अपने आपको दुखी अनुभव करता हुआ सोचता है कि यह दुख मुझे क्यों हो रहा है और यह कैसे नष्ट हो सकता है। इतना अवश्य है कि जो तत्वश्रद्धानी कभी गृहस्थोचित बातों की तरफ से मन को मोड़कर एकसा विचार कर रहा हो कि मैं स्वभाव की अपेक्षा तो सिद्धों के समान निर्विकार हूँ। वर्तमान में कर्म संयोग के कारण बाह्य पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट कल्पना रूप विकार मुझमें हो रहा है, जिसे मुझे छोड़ना चाहिये इत्यादि। तो उसका यह विचार सद्विचार है धर्मभावना रूप है और मंद लेश्या के होने से होने वाला यह परिणाम स्वरूपाचरण या आत्मानुभूति या आत्मानुभव में कारण माना गया है।'

आ. ज्ञानसागर जी महाराज के उपरोक्त प्रकरण के अनुसार चतुर्थ गुणस्थान में आत्मविश्वास तो होता है परन्तु आत्मानुभूति अथवा स्वरूपाचरणरूप चारित्र कदापि नहीं होता।

(7) प्रश्नकर्ता- कान्ताप्रसाद जी मुज्जफरनगर

जिज्ञासा - क्या अभव्य अहमिन्द्र पद प्राप्त कर सकता है ?

समाधान- सोलहवें स्वर्ग से ऊपर नवग्रैवेयक, नव अनुदिश एवं पंच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए सभी देव स्वयं को इन्द्र समान उद्घोषित करने वाले होते हैं, अतः उन सबको अहमिन्द्र कहा जाता है। जिज्ञासाकार का प्रश्न यह है कि अभव्य इन देवों में उत्पन्न होता है या नहीं ?

समाधान यह है कि अनुदिश और अनुत्तर में उत्पन्न होने वाले जीव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, सम्यग्दर्शन एवं भावलिङ्ग सहित दिग्म्बर मुनि अवस्था धारण किए बिना इनमें उत्पन्न होना संभव नहीं होता। अतः इनमें अभव्य की उत्पत्ति संभव नहीं है परन्तु अभव्य को संसार भ्रमण करते हुए पंच परावर्तन करने होते हैं। इनमें चतुर्थ भव परावर्तन है। इसको पूरा करने के लिए चाहे भव्य हो या अभव्य सभी को नीचे सातवें नरक तक, ऊपर नवम् ग्रैवेयक तक तथा मनुष्य एवं तिर्यच आयु के समस्त विकल्पों में उत्पन्न होना है आवश्यक होता है तदनुसार जब कोई अभव्य जीव भय परिवर्तन करते हुए ग्रैवेयकों के सभी आयु विकल्पों में उत्पन्न होता है तब वह अहमिन्द्र पद को अवश्य प्राप्त करता है। इस प्रकार अभव्य भी अहमिन्द्र पद को प्राप्त करते हैं, यह स्पष्ट हुआ।

1/205, प्रोफेसर कॉलोनी,

आगरा - 282 002

समाचार

डॉ. शिखरचंद जी की कुण्डलपुर में सल्लेखना

हटा। विश्ववन्दनीय संतशिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के संघ सान्निध्य में कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी के पूर्वअध्यक्ष दशम प्रतिमाधारी, गुरुचरणों में मुक्ति की अभिलाषा रखनेवाले, बड़ेबाबा के परमभक्त ब्रह्मचारी डॉ. शिखरचंद जैन हटा (75 वर्ष) ने सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में धुलेंडी की शाम 6:44 बजे इस नश्वर देह को त्याग कर समाधि प्राप्त की। होली (धुलेडी) पर्व पर भारी संख्या में देश के कोने-कोने से श्रद्धालु भक्तगण कुण्डलपुर में एकत्र हुये थे। दोपहर में आचार्यश्री का मंगल प्रवचन हुआ, संध्याकाल आचार्यभक्ति में सम्मिलित होने डॉ. शिखरचंद पैदल चलकर ज्ञानसाधना केन्द्र में आचार्यश्री के समक्ष पहुँचे। आचार्यभक्ति के बाद वहाँ लेटे शिखरचंद जी को आचार्यश्री ने संबोधित किया। हाथ उठाकर बड़ेबाबा की जय बोलने को कहा तो उन्होंने हाथ उठाकर संकेत दिया। इस बीच आचार्यश्री का पूरा संघ (लगभग 51 मुनिगण) महामंत्रणमोकार का उद्घोष करते रहे और देखते-देखते शिखरचंदजी इस असार संसार से विदा हो गये।

डॉ. जैन अनेक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं से जुड़े रहे। कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी के महामंत्री एवं अध्यक्ष भी रहे। दो चातुर्मास आचार्यश्री ने इनके कार्यकाल में किये। आचार्यश्री के समक्ष दीक्षा हेतु प्रयासरत् रहे। सल्लेखना हेतु भी अनेक बार निवेदन किया। अन्ततः उनकी अभिलाषा बड़े बाबा के चरणों में पूर्ण हुई।

धर्मात्मा निकट हों, चर्चा धरम सुनावें।

वो सावधान रक्खें, गालिफ न होने पावें॥

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।

देहान्त के समय में गुरु को न भूल जाऊँ॥

अन्त्येष्टि समाधिस्थल छैघरिया के पास कुण्डलपुर में सम्पन्न हुई।

ऐसी सल्लेखना के लिए बड़े-बड़े आचार्य भी तरसते हैं

डॉ. शिखरचंद जी के योगदान को आचार्य श्री ने सराहा

कुण्डलपुर के पहले चातुर्मास सन् 1976 में डॉ. शिखरचंद हटावालों ने विद्याभवन की बात रखी थी, वे उस समय कुण्डलपुर कमेटी के अध्यक्ष थे। उन्होंने जिस कर्मठता

से क्षेत्र का विकास किया और योगदान दिया है, उसको देखकर लगता है कि यदि ऐसे लोग हो जाएँगे तो भारतवर्ष में कई बड़ेबाबा के मंदिर बन सकते हैं। इन जैसा समर्पित व्यक्ति अत्यंत दुर्लभ है, वे माई के लाल थे,

कुण्डलपुर के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने 5-5 वर्ष के दो कार्यकाल पूर्ण किए। उसी समय कुण्डलपुर के बड़ेबाबा के मंदिर के जीर्णोद्धार की योजना बनी, जो आज भी जारी है। इसी समय उन्होंने व्रती बनने का संकल्प लिया। समय रहते उन्होंने साधना प्रारंभ की। पहली प्रतिमा से दसवीं प्रतिमा तक की साधना निर्दोष रूप से की। उक्त आशय के उद्गार संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने डॉ. शिखरचंद जैन हटा की समाधिमरण (सल्लेखना) के बाद आयोजित श्रद्धांजली सभा में व्यक्त किए। आचार्यश्री ने डॉ. शिखरचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व की चर्चा करते हुए कहा कि उनकी भावना हमेशा सल्लेखना की रहती थी। कुछ चीजें भावना से होती हैं, न धन लगता है, न तन लगता है। ऐसी सल्लेखना के लिए बड़े-बड़े आचार्य भी तरसते हैं। वे बड़ेबाबा के लिए समर्पित थे और उन्होंने बड़ेबाबा के ही चरणों में नश्वर शरीर को समर्पित किया। उनकी सल्लेखना में 50 मुनियों की उपस्थिति अपने आप हो गई। अभी वे तिलवारा दयोदय आए थे और कहा कि मैं वृद्ध हूँ, इसलिए आप दीक्षा नहीं दे रहे हैं, यह मेरे लिए अभिशाप है। मैं निर्विकल्प रहना चाहता था, इसलिए उन्हें दीक्षा नहीं दी। शरीर से वृद्ध हो गए थे। शरीर भी जीर्ण-शीर्ण था। उन्हें निर्देश दिए गये कि आप सल्लेखना की तैयारी करो। उनकी भावना थी- मैं बड़ेबाबा के पास रहना चाहता हूँ और छोटेबाबा आपको भी छोड़ना नहीं चाहता हूँ, हमेशा बड़े-बड़े पत्र लिखकर भेजा करते थे। पत्र पढ़कर लगता था कि उनकी उत्कृष्ट भावना सल्लेखना की है। योग बना, हमारा यहाँ आना हुआ। कल शाम को उनके शरीर ने काम करना छोड़ दिया। परसों वे मेरे पास आए और कहा कि आज बहुत बढ़िया लग रहा है, आज्ञा हो तो बड़ेबाबा के दर्शन के लिए चला जाऊँ। विशुद्धि अच्छी थी, 24 घंटे नहीं हुए, शरीर और डाउन हुआ। कल शाम को भक्ति के बाद समस्त मुनिसंघ की उपस्थिति में 15 मिनट नहीं लगे। उन्हें संबोधित किया। उनसे कहा- बड़ेबाबा को नमोस्तु करो। हाथ उठाया और ओंठ हिलाये। 15 मिनट के भीतर खेल समाप्त हो गया।

आप लोगों को इससे प्रेरणा लेना चाहिए। अभी आठ दिन पूर्व प्रेमचंद जैन ललितपुर, जो उदासीन आश्रम में रहते थे, बड़ेबाबा के अभिषेक के लिए तिलक लगाया अपने ललाट पर और बड़ेबाबा के श्रीचरणों में जैसे ही सिर नवाया कि संसार से प्रस्थान कर गए। यह बुंदेलखंड साधना का खंड है, यहाँ अच्छी विशुद्धि है। शुद्ध रहन-सहन और व्यवसाय है, सादगी है। यहाँ का सही विकास नहीं हुआ है, परन्तु धार्मिक दृष्टि से यहाँ का विकास बहुत अच्छा है। दिवंगत आत्मा की भावना शीघ्र पूर्ण हो। श्रद्धांजली-सभा में पं. मूलचंद लुहाड़िया-मदनगंज किशनगढ़, ब्र. जिनेशजी, अधिष्ठाता जैन गुरुकुल मढ़िया (जबलपुर), जयकुमार 'जलज', संतोष सिंघई अध्यक्ष कुंडलपुर सिद्धक्षेत्र कमेटी ने भी श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए कहा कि डॉ. शिखरचंद जी व्रतों के प्रति कट्टर थे, साधना के लिए उनका समर्पण अद्वितीय था।

मण्डला (म.प्र.) में पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के आशीर्वाद से रेवा-तट पर बसी नगरी (मण्डला) में प्रथम बार दिनांक 11-02-05 से दिनांक 17-02-05 तक आयोजित होने वाले ऐतिहासिक त्रय-गजरथ महोत्सव में सिवनी से बिहार कर पधारे आचार्य श्री विद्यासागरजी के आज्ञानुवर्ती परमशिष्य मुनिश्री समतासागर जी, ऐलक श्री निश्चयसागरजी, क्षुल्लक श्री पूर्णसागरजी महाराज के मण्डला नगर में प्रवेश के अवसर पर उनकी भव्य अगवानी की गई।

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर महावीर मार्ग मण्डला के भूतल में श्री सिंघई केशरीचंद द्वारा नवनिर्मित वेदी, उस पर श्री सन्तोषकुमार अभिलाषकुमार जैन द्वारा विराजमान अतिमनोज्ञ अतिशयकारी श्री 1008 श्री शान्तिनाथ भगवान की श्वेत मार्बल की पद्मासन प्रतिमाजी एवं रायसेठ नन्दनकुमारजी परिवारजन द्वारा द्वितीय तल पर कलात्मक वेदी, जिसकी नक्काशी में शुद्ध सोने का वर्क लगाकर अति सुन्दर नवनिर्मित कांच की वेदी पर श्री 1008 श्री शीतलनाथ भगवान की लाल पाषाण की पद्मासन 5 फुट की प्रतिमा विराजमान की।

महाराजश्री के सान्निध्य में वाणीभूषण बा.ब्र. प्रतिष्ठाचार्य विनय भैयाजी के तत्वावधान में पंचकल्याणक पूजा विधान

संपन्न हुआ। मुनि श्री समतासागर जी महाराज ससंघ मण्डला नगर के शान्तिनाथ जिनालय में विराजमान हैं। मुनिश्री की नियमित धर्मदेशना, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, ग्रन्थ पर हो रही है। अष्ट दिवसीय जनजागरण प्रवचनमाला के जनकल्याणकारी उपदेशों से प्रभावित होकर आदिवासी-बाहुल्य इलाके के अनेक लोगों ने मद्यमांस का त्याग किया।

अशोक कौछल, मण्डला

श्री सम्पेदशिखर में सिद्धचक्रमण्डलविधान सम्पन्न मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज द्वारा अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक शिष्य मुनिश्री प्रमाणसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में तीर्थराज सम्पेद शिखर में 1008 सिद्धचक्र महामण्डल विधान धूमधाम से सम्पन्न हुआ। अष्टाहिका महापर्व के पावन अवसर पर आयोजित इस महोत्सव का आयोजन धर्मप्रभावना समिति के तत्वावधान में किया गया, आयोजन के पुण्यार्जक के बनने का सौभाग्य तेरह पंथी कोटी के क्षेत्रीय मंत्री प्रसिद्ध समाजसेवी मुनिभक्त श्री कन्हैया लाल जी सुगनी देवी औरंगाबाद को मिला जिन्होंने इस महोत्सव में सम्पूर्ण खर्च अपनी ओर से किया। विविध धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न होने वाले इस आयोजन का शुभारम्भ अशोक जी पाटनी आर.के. मार्बल किशनगढ़ के कर कमलों से हुआ। अपने परिवार सहित पधारे श्री पाटनी जी ने अपनी ओर से ग्यारह लाख रूपये की दान राशि घोषित की। आयोजन का समस्त विधि विधान प्रतिष्ठाचार्य बा.ब्र. प्रदीप जी अशोकनगर व ब्र. अन्नु भैया शहपुरा के निर्देशन में सम्पन्न हुआ।

आयोजन में सबसे ज्यादा आकर्षण मुनिश्री के प्रवचनों में देखा गया प्रतिदिन प्रातः और दोपहर में मुनिश्री के प्रभावी प्रवचन हुए। दिल और दिमाग को झकझोर देनेवाले मुनिश्री के मोहक प्रवचनों ने सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया। इस आयोजन में बहुत से लोग शामिल हुए थे, जिन्होंने मुनिश्री के पहलीवार ही दर्शन किए थे। झारखण्ड के लाल को इतनी प्रभावी स्थिति में देखकर सभी का मन अभिभूत था। सायंकाल आचार्य भक्ति के उपरान्त शंका समाधान के कार्यक्रम में मुनिश्री अपने तार्किक उत्तरों से सभी की भ्रान्तियों को बड़ी सहजता से सरल कर देते थे।

छीतरमल जैन पाटनी

व्रत-वैभव का लोकार्पण सम्पन्न

दिल्ली (रोहिणी, सेक्टर-8) में आयोजित पंचकल्याणक महोत्सव में ज्ञानकल्याणक के दिनांक (18-2-05) को देश के सुविख्यात प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचंद पुष्प के निर्देशन में ब्र. जयकुमार निशान्त के संकलन/संयोजन तथा ब्र. विनोद जैन (पपौरा जी) और पं. विनोद जैन (रजवांस) के संपादकत्व में प्रकाशित महनीय कृति 'व्रत वैभव' का लोकार्पण हुआ। चार खण्डों में प्रकाशित इस ग्रन्थ में 475 व्रतों का स्वरूप, उनकी पूजा, कथाएँ, मंत्र, उद्यापन विधि आदि का विस्तार से विवरण दिया गया है।

'व्रत वैभव' के चारों भागों का प्रकाशन मन्त्रालय जैन प्रतिष्ठाचार्य स्मृति ट्रस्ट, टीकमगढ़ की ओर से किया गया है। चारों भागों का मूल्य 380 रु. है। यह ग्रन्थ ब्र. जयकुमार 'निशान्त' पुष्प भवन, टीकमगढ़ (म.प्र.), श्री दि. जैन पंचबालयति मन्दिर, सत्यम गैस के सामने, ए बी रोड, इंदौर (म.प्र.) आदि से प्राप्त किया जा सकता है।

डॉ. ज्योति जैन
खतौली- 251201 (उ.प्र.)

भ. आदिनाथ का जन्म व तप कल्याणक महोत्सव संपन्न

अजमेर, 03 अप्रैल 05। श्री दिगम्बर जैसवाल जैन समाज की ओर से परमपूज्या आर्यिका 105 श्री पूर्णमति माताजी ससंघ के पावन सान्निध्य में लाल कोठी केसरगंज के प्रांगण में भगवान आदिनाथ का जन्म व तप कल्याणक महोत्सव बड़े हर्ष व उल्लास के साथ मनाया गया।

हीराचन्द जैन

प्रोफेसर डॉ. 'भागेन्दु' जैन (दमोह) श्रुत सम्बद्धन पुरस्कार से सम्मानित

वर्ष 2004 का आचार्य शान्तिसागर (छाणी) स्मृति श्रुत सम्बद्धन पुरस्कार विद्वद् जगत के गौरव, दमोह जिला जैन पंचायत एवं दिगम्बर जैन पंचायत के संरक्षक डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' को गत 18 फरवरी 2005 को राजस्थान के अतिशय क्षेत्र तिजारा (जिला-अलवर) में एक भव्य समारोह में सराकोद्वारक प० पू० उपाध्यायरत्न ज्ञानसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में रुपये 31000=00 की सम्मान निधि के साथ शाल, श्रीफल, साहित्य-प्रशस्ति एवं स्मृतिचिन्ह के रूप में प्रदान किया गया।

डॉ. ऋषभ सिंघई सम्मानित

दयोदय पशुधन संरक्षण समिति एवं श्री माणिकचंद माणकबाई परमार्थिक ट्रस्ट हरदा के संयुक्त तत्वावधान में नेत्र-रोग चिकित्सा-शिविर के समापन अवसर पर 25 हजार नेत्र रोगियों का सफल ऑपरेशन करनेवाले नगर के सुप्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डॉ. ऋषभ सिंघई का भावभीना सम्मान किया गया।

महेन्द्र कुमार अजमेरा

श्री भागचन्द जी बाकलीवाल के सुपुत्र (चि. जितेन्द्र) का विवाह सम्पन्न

सांगानेर, जयपुर श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी के कोषाध्यक्ष, जाने



माने समाज सेवी एवं विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं से जुड़े श्री भागचन्दजी बाकलीवाल के सुपुत्र चि. जितेन्द्र (बबलू) जैन का शुभ विवाह जयपुर के व्यवसायी श्री तेजकरणजी शाह की सुपुत्री सौ.कॉ. शुची के साथ दिनांक 18. 02. 2005 को सानन्द सम्पन्न हुआ। इस शुभअवसर पर जिनभाषित को पांचसौ एक रुपये का आर्थिक अनुदान प्रदान किया।

द्वारा : मानद मंत्री
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी
सांगानेर, जयपुर (राज.)

स्कूलों में जीवधारियों के विच्छेदन पर रोक अगले सत्र से

भोपाल। मध्यप्रदेश के स्कूलों में जीवविज्ञान के पाठ्यक्रम में जीवधारियों के विच्छेदन (डिसेक्सन) पर रोक वर्ष 2005-06 के शिक्षा सत्र से लागेगी। यह जानकारी स्कूल-शिक्षा मंत्री ढालसिंह विसेन ने श्री अजय विश्रोई के प्रश्न के लिखित उत्तर में दी। डॉ. विसेन ने कहा कि जीवधारियों के विच्छेदन पर रोक का निर्णय माध्यमिक शिक्षा मंडल द्वारा जीवविज्ञान विषय समिति की सिफारिश एवं पाठ्यचर्या समिति के अनुमोदन के बाद लिया गया है। अभी जीवविज्ञान के प्रायोगिक कार्य में डिसेक्सन पर ऐच्छिक रोक है। अब इसे पूरी तरह प्रतिबंधित किया जायेगा।

मुकेश शाह एडवोकेट, जयकुमार 'जलज' हटा

श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान महोत्सव सानन्द सम्पन्न
मदनगंज (राज.) में फाल्गुन मास की अष्टाह्निका पर्व में दिनांक 18 मार्च से 26 मार्च तक आयोजित 8 दिवसीय श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान महोत्सव का समापन रविवार को भव्य शोभायात्रा के साथ हुआ। इसका आयोजन श्री चेलना जागृति महिला मण्डल ने किया था।

शान्ता पाटनी, मदनगंज

हैदराबाद में जैन गुरुकुल की स्थापना

जून 2004 को हैदराबाद में गुरुकुल की स्थापना की गई, जिसमें वर्तमान में 25 छात्र इंटर प्रथम वर्ष में अध्ययनरत हैं। प्रतिवर्ष 25 दिगम्बर जैन छात्रों को जो 10 वीं कक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हैं, उनको प्रवेश दिया जाता है।

जो छात्र धर्म में रुचि रखते हैं, 10वीं कक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हैं तथा जो अपना भविष्य बनाना चाहते हैं, वे आवेदनपत्र यहाँ भेजने की कृपा करें। यहाँ पर सारी व्यवस्था निःशुल्क प्रदान की जाती है।

दिनेश पाटनी, व्याख्याता/अधीक्षक
श्री पारसनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल
दिगम्बर जैन भवन, 15-2-262,
महाराजगंज, हैदराबाद - 500012
फोन : 55586295

सनमत जैन मंत्री एवं शरद जैन आजीवन ट्रस्टी

श्री गुलाबबाई दिगम्बर जैन कन्या विद्यालय भोपाल ट्रस्ट जो कि 70 वर्षीय पुरानी है उसमें सनमत कुमार जैन को मंत्री के पद पर एवं शरद जैन भोपाल (राष्ट्रीय मंत्री भारत वर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी एवं श्री दिगम्बर जैन तीर्थराज सम्मेद शिखर जी शाश्वत ट्रस्ट) को सर्वानुमति से आजीवन ट्रस्टी नियुक्त किया गया है।



उल्लेखनीय है इस कन्या विद्यालय में प्रथम कक्षा से आठवीं कक्षा तक छात्रायेँ निःशुल्क अध्ययन रत हैं।

राजमल पवैया

धर्मयोगी ही सच्चा योगी

गढ़ाकोटा, जैन मित्र मिलन बालिका संघ के तत्वावधान में चल रहे विशाल व्यक्तित्व विकास एवं योग प्रशिक्षण शिविर में शिविर निर्देशिका डा. वन्दना जैन 'सागर' ने कहा कि 'यौगिक जीवन अपनाने के लिए जरूरी है कि

हम समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी बनें, गरीब के लिए सहयोगी बनें, अपने कार्य को पूजा की तरह सम्पादित करने के लिए कर्मयोगी तथा आत्मकल्याण के लिए धर्मयोगी बनें तभी हम सच्चे योगी बन सकते हैं। तथा इसी में हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ मष्तिष्क का होना जरूरी है। स्वस्थ मष्तिष्कजीवन के हर क्षेत्र में अग्रणी होता है।'

श्रमण ज्ञान भारती : छात्र प्रवेश सूचना

पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के मंगल आशीर्वाद एवं उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज की मंगल प्रेरणा से संचालित श्रमण ज्ञान भारती विद्या निकेतन चौरासी मथुरा का पंचम शैक्षणिक सत्र 1जुलाई 2005 से प्रारंभ हो रहा है।

यह भारतवर्ष का सर्वोत्तम छात्रावास है। जहाँ छात्रों को लौकिक शिक्षा (वाणिज्य, विज्ञान, कम्प्यूटर) के साथ धार्मिक शिक्षा एवं संस्कार दिए जाते हैं। पाँच वर्षों में धार्मिक शिक्षा में छात्र प्रवेशिका, छहदाला, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, इष्टोपदेश, समयसार एवं संस्कृत के स्तोत्रों आदि में योग्यता एवं प्रतिष्ठा विधिविधान व वास्तुज्ञान, योग्य विद्वानों के द्वारा प्राप्त करते हैं।

विद्यार्थियों को आवास, भोजन, लेखन सामग्री आदि की सुविधा निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती है।

जिन छात्रों ने दसवीं (हाईस्कूल) की परीक्षा इस वर्ष उत्तीर्ण की है तथा प्रवेश के इच्छुक हैं। वह अपना प्रार्थनापत्र, पासपोर्ट साइज फोटो एवं अंकतालिका 20 जून तक उपरोक्त पते पर भेज सकते हैं।

जिनको दसवीं कक्षा में 55% से कम अंक प्राप्त हुए हों वे प्रार्थना पत्र न भेजें।

सेठ विजय कुमार टोंग्या
अध्यक्ष

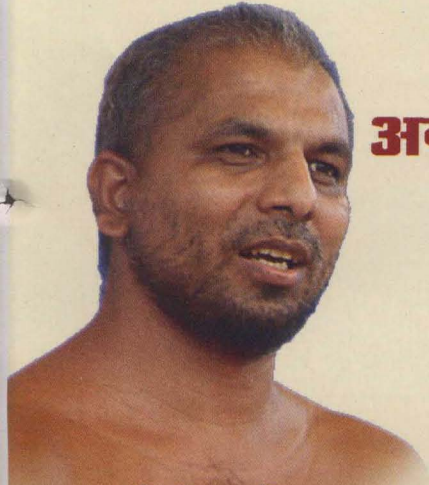
निरंजनलाल बैनाड़ा
अधिष्ठाता

फोन नं. 0565-2420323

जरूर सुनें

सन्त शिरोमणि आचार्यरत्न श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के आध्यात्मिक एवं सारगर्भित प्रवचनों का प्रसारण 'साधना चैनल' पर प्रतिदिन रात्रि 9.30 से 10.00 बजे तक किया जा रहा है, अवश्य सुनें।

नोट : यदि आपके शहर में 'साधना चैनल' न आता हो तो कृपया मोबाइल नं. 09312214382 पर अवश्य सूचित करें।



मुक्ति के प्रति अनुराग से ही आत्म कल्याण संभव है

संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के अज्ञानवर्ती शिष्य
मुनिश्री प्रमाणसागर जी महाराज द्वारा
पर्वतराज अम्मेदशिखर के पादमूल में अवस्थित
तेरापंथी कोठी मधुवन के सभागार में आयोजित धर्मसभा में
व्यक्त किये विचार

● मुनिश्री प्रमाणसागर जी

सम्मदशिखरजी, आतुरता और आकुलता दोनों मन में हैं। एक लंबे अंतराल के बाद वंदना करने का अवसर मिला। आतुरता है कि कितनी जल्दी उन चरणों को प्राप्त करूँ जो सिद्धालय में विराजमान हैं। आकुलता है कि उन महापुरुषों की तरह कब सिद्धालय में पहुँचूँ। अरिहंत और सिद्ध भगवंतों ने यहाँ आकर निर्वाण प्राप्त किया। क्या कारण है? मध्यलोक का वैभव उनके चरणों में था। क्यों उन्होंने यहाँ आकर, तपस्या कर निर्वाण प्राप्त किया। संत कहते हैं- राज-पाठ, भोग-विलास ही स्थायी नहीं है, तब उनसे सुख कैसे मिल सकता है। जब तक बंधन में बंधे रहोगे, तब तक संसार में सुख नहीं। यहाँ दुःख ही दुःख है। जब तक आत्मा बंधन से मुक्त नहीं होगी, तब तक मुक्ति संभव नहीं है।

हममें और भगवान में कोई मौलिक अंतर नहीं है। अंतर सिर्फ इतना है कि उन्होंने विकारों को जीत लिया है हम विकारों में जी रहे हैं। हमने अपने विकारों को जीत लिया होता, तो हमारा भी स्थान इसी पर्वत की किसी टोंक पर होता। बहुत ही विरल होते हैं, जो आवागमन के चक्र से ऊपर उठ पाते हैं। अधिकतर लोग संसार में ही सुख ढूँढ़ते हैं, यदि संसार में सुख होता तो तीर्थकर क्यों वन को जाते। जब तक बंधन से मुक्ति नहीं मिलेगी कल्याण संभव नहीं है।

संसार और मुक्ति एक साथ नहीं मिल सकते। जिसके मन में तड़फ होती है, वे ही मुक्ति के मार्ग पर चल पाते हैं। शब्दों से मुक्ति संभव नहीं है। जो संसार में जीना चाहता है उसकी मुक्ति, मुक्तिधाम (श्मशानघाट) में ही होगी। जन्म-मरण बार-बार होता है, मुक्ति सिर्फ एक बार होती है। साधना की शान पर जो चढ़े, वे ही मुक्ति को पाते हैं।

परमात्मा से प्रार्थना तो हम करते हैं, परन्तु मन में कुछ और ही कामना रहती है। मुक्ति मार्ग में यह दोहरापन नहीं चलता। बहानेबाजी में इंसान माहिर होता है। नर से नारायण निरंजन बन सकते हैं। यह पुरुषार्थ मनुष्य जीवन में ही है। धर्म की शरण मिली है, बुद्धि मिली है। यह समय पाने का है, खोने का नहीं। यह जो अवसर मिला, मानव पर्याय मिली है इसे व्यर्थ में खोना नहीं है। आत्मकल्याण की दिशा में एक कदम ईमानदारी से बढ़ायें, तभी कल्याण संभव है। अपने स्वरूप को पहिचानने की कोशिश करें। परमात्मा के अभाव में डरना महसूस करोगे, उसी क्षण आपको मुक्ति का मार्ग मिल जावेगा। भगवान वीतरागी हैं। आप सभी वीतरागी हैं। वित्त हटे, आप वीतरागी हो जावेंगे। मुक्ति के प्रति अनुराग ही हमें एक दिन मुक्ति की राह बतायेगा।

प्रस्तुति : अभिनंदन सांधेलीय,
पत्रकार-पाटन (जबलपुर)

परमपूज्य संतशिरोमणि आचार्य श्री 108विद्यासागरजी महाराज के आशीर्वाद
एवं पूज्य मुनिपुंगव श्री 108सुधासागरजी महाराज की प्रेरणा से संस्थापित
श्री दिगम्बर जैन श्रमण-संस्कृति संस्थान द्वारा संचालित

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास

प्रवेश सूचना

श्री दिगम्बर जैन श्रमण-संस्कृति संस्थान द्वारा संचालित महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास का नवम् सत्र 1 जुलाई, 2005 से प्रारम्भ होने जा रहा है। यह छात्रावास आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न व अद्वितीय है, जहाँ छात्रों को आवास, भोजन, पुस्तकें, शिक्षण आदि की समस्त सुविधायें निःशुल्क उपलब्ध हैं।

इस छात्रावास में प्रवेश हेतु सम्पूर्ण भारत के छात्र इच्छुक रहते हैं, तदनुसार विभिन्न प्रदेशों के लिये स्थान आरक्षित (आवंटित) हैं। यहाँ छात्रों को राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड व राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय के निर्धारित पाठ्यक्रम का अध्ययन नियमित छात्र के रूप में श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज, सांगानेर, जयपुर में कराया जाता है। कॉलेज के पाठ्यक्रम एवं पठन के अतिरिक्त संस्थान में जैनदर्शन, संस्कृत, ज्योतिष, वास्तुशिल्प विज्ञान एवं अंग्रेजी आदि विषयों का अध्ययन तथा कम्प्यूटर शिक्षा योग्य अध्यापकों द्वारा कराया जाता है।

इस छात्रावास में रहते हुए छात्र शास्त्री स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जैनदर्शन का एक योग्य विद्वान् तो हो ही जाता है, साथ ही यह सरकार द्वारा आयोजित आई.ए.एस., आर.ए.एस. जैसी सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित हो सकता है तथा अपनी प्रतिभा के अनुरूप अपेक्षित विषयों का चयन कर उच्चशिक्षा प्राप्त कर सकता है।

इस छात्रावास में अंग्रेजी सहित 10 वीं कक्षा उत्तीर्ण छात्र ही प्रवेश ले सकते हैं, अतः जो अभिभावक अपने बालक को छात्रावास में प्रवेश कराने के इच्छुक हों तथा जिनके बच्चों ने 10 वीं की परीक्षा दे दी है, निम्न स्थानों में से किसी एक स्थान के प्रवेश एवं चयन शिविर में बालक को भेजकर लाभ ले सकते हैं।

क्र. सं.	स्थान	शिविर की तिथियाँ
1.	श्री दिगम्बर जैन महावीर भवन, बारामती, जिला-पुणे (महाराष्ट्र) सम्पर्क सूत्र: श्री बालचंद संघवी (02112-222426)	दि. 18-4-05 से 28-4-05
2.	श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास, जैन नशियां रोड, सांगानेर, जयपुर (राज.) सम्पर्क सूत्र: श्री राजमल बेगस्या (मो. 09214507630, 9414337374)	दि. 22-5-05 से 29-5-05
3.	श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, गुना, जिला-अशोक नगर (म.प्र.) सम्पर्क सूत्र: श्री पी. के. जैन (07542-224936)	दि. 12-6-05 से 22-6-05

शिविर में आकर अध्ययन करनेवाले शिविरार्थियों को परीक्षा एवं साक्षात्कार द्वारा तथा उनकी गतवर्ष की परीक्षा के प्रमाणपत्रों के आधार पर चयनित किया जायेगा।

गणेश कुमार राणा अध्यक्ष फोन: 2374702
महावीर प्रसाद पहाड़िया मंत्री फोन: 2205772
रतनलाल बैनाड़ा अधिष्ठाता फोन: 09412264445
राजमल बेगस्या उप अधिष्ठाता फोन: 2300594
डॉ. शीतलचंद्र जैन निदेशक फोन: 2781649